SRI SRI RAVI SHANKAR
BECOME FREE

गणि राजेन्द्र विजय
अहिंसा और पर्यावरण

www.sukhiparivar.com

₹25

समृद्ध सुखी परिवार

मार्च 2011

दयालु और दानी आदिदेव शिव

सकारात्मक सोच और अध्यात्म

योगनिद्रा: एक समग्र उपचार पद्धति

परिवार की सुख-समृद्धि का आधार है संस्कार

जीवन में रंग भरने का त्योहार होली

VASU CREATION

B-4/1626,RAI BAHADUR ROAD,LUDHIANA - 141 008
Phone No. 0161-2740154, 98142-62392

Mfrs. of PREMIUM RANGE OF GIRLS, LADIES & GENTS NIGHT WEARS,

-: SPECIALISTS IN :-

❖LONG KURTA ❖3PC SET ❖MATERNITY WEAR ❖JIM WEAR ❖CAPRI SET & SLEX SUIT.

समृद्ध सुखी परिवार

सुखी और समृद्ध परिवार का मुखपत्र

वर्ष : 2 अंक : 2
मार्च 2011, मूल्य : 25 रु.

मार्गदर्शक
गणि राजेन्द्र विजय

परामर्शक
मनीष जैन
अध्यक्ष: सुखी परिवार फाउंडेशन

संपादक
ललित गर्ग
(9811051133)

लेआउट आर्टिस्ट
एम एस बोरा
(9910406059)

संपादक मंडल
दीपक रथ, मितेश जैन, चेतन आर. जैन,
दीपक जैन-भायंदर,
श्रेणिक एम. जैन-मुंबई, निकेश जैन,
चंदू वी. सोलंकी-बैंगलोर,
राजू वी. देसाई-अहमदाबाद,
मुकेश अग्रवाल-दिल्ली

विज्ञापन प्रतिनिधि
जसवंत परमार

: शुल्क :
वार्षिक: 300 रु.
दस वर्षीय: 2100 रु.
पंद्रह वर्षीय: 3100 रु.

कार्यालय
ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट
25 आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज
दिल्ली-110092
फोन: 011-22727486, 43057823
E-mail : lalitgarg11@gmail.com

अहिंसा और पर्यावरण

7

वायु, पानी, मिट्टी, पेड़-पौधे और जानवर सभी मिलकर एक सुन्दर पर्यावरण का स्वच्छ वातावरण की रचना करते हैं। ये सभी घटक पारस्परिक संतुलन बनाये रखने के लिए एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जब (भौतिक) विकास के लिए प्रकृति का सीमा से अधिक उपयोग किया जाता है, तब हमारे पर्यावरण या वातावरण में परिवर्तन होता है। यदि इन परिवर्तनों की प्रक्रिया का प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं बिठाया जाता और परिस्थिति-विज्ञान संबंधी संतुलन कायम नहीं रखा जाता तो उससे न केवल विकास-व्यय के बढ़ने का खतरा पैदा होता है, बल्कि उससे ऐसा असंतुलन पैदा हो सकता है जिससे पृथ्वी पर मनुष्य जाति का जीवन खतरे में पड़ सकता है।

-गणि राजेन्द्र विजय

6	सत्संग की महिमा	वल्लभ उवाच
6	क्या है विश्व-शांति	जगद्गुरु कृपालु महाराज
8	नमस्कार महामंत्र: संप्रदाय की प्रतिबद्धता से मुक्त मंत्र	आचार्य महाश्रमण
9	पवित्र यज्ञ है विवाह	दुर्गेश मिश्र
10	गंगा-जमुनी तहजीब के रचनाकार	बद्री नारायण तिवारी
11	व्याधि निवारक है कत्थक	आकांक्षा यादव
12	जीवन में रंग भरने का त्योहार होली	हीरालाल छाजेड़ 'जैन'
13	होलिका की नहीं, भक्त प्रह्लाद की जय	सुप्रिया
14	हम क्यों भटक रहे हैं	राजीव मिश्र
15	मन की देहरी	कविता भाटिया
16	हम अपनी पहचान न भूलें	डॉ. सुनील कुमार अग्रवाल
18	नारी का असली सौंदर्य शरीर नहीं, शील है	जयशंकर मिश्र 'सव्यसाची'
19	सफलता की सीढ़ी है एकाग्रता	डॉ. कुलभूषणलाल मखीजा
20	नई ऊर्जा और स्फूर्ति को जीएं	संदीप फाफरिया 'सृजन'
21	अहिंसा का तेजस्वी होना	साध्वी कल्पसाश्री
22	पालनहार मां-कर्णधार बच्चा	साध्वी मुदितयशा
23	न्यूमरोलॉजी में नंबर-2 का महत्व	नीता बोकाड़िया
23	स्वाभिमानी ही देशप्रेम कर सकता है	डॉ. महावीरराज गेलड़ा
26	दयालु और दानी आदिदेव शिव	डॉ. रामसिंह यादव
27	परिवार की सुख-समृद्धि का आधार है संस्कार	लाजपतराय जैन
28	मेरा परिवार-सुखी परिवार	साध्वी राजीमती
29	गांधी और महावीर की अहिंसा ही है शांति का मार्ग	शबाना आज़मी
30	आहार से जुड़े नुस्खे	बेला गर्ग
31	सकारात्मक सोच और अध्यात्म	ई. श्रीधरन
31	मंत्र क्या है?	आचार्य महाप्रज्ञ
31	उत्साह बनाये रखें	जोगिन्दर सिंह
32	चमत्कारिक औषधि है शंख	ललन कुमार प्रसाद
33	मां सरस्वती की महिमा	मुरली कांठेड़
34	कटु सत्य के इर्द-गिर्द जीवन	मुनिश्री तरुणसागरजी
34	स्वस्थ एवं सुखी जीवन के टोटके और उपाय	पं. गोपाल शर्मा
35	इस आडंबर का क्या इलाज?	शंभु चौधरी
36	ऐसे होती है बरसाने की लठमार होली	डॉ. अनामिका प्रकाश
37	योगनिद्रा: एक समग्र उपचार पद्धति	विपिन कुमार
38	New Life for Vivekananda	Deepak Chopra
38	Desire God Alone	Ramnatha Narayanswamy
39	Become Free	Sri Sri Ravi Shankar
39	The Ways of the World	Swami Sukhabodhananda
40	सौंदर्य की प्रतीक मेंहदी	डॉ. उषा अरोड़ा
41	भय और भारस्वरूप नहीं है बुढ़ापा	मंजुला जैन
44	सार्थक दिशाओं का उद्घाटन	ललित गर्ग
44	अध्यात्म वाणी: गागर में सागर	बरुण कुमार सिंह
45	महादेवी वर्मा: एक प्रतिहत आत्मा का दीपार्चन	प्रेमकुमारी कटियार
46	एक उत्सव है जीवन	मनीष जैन

Published, Printed, Edited and owned by Lalit Garg from E-253, Saraswati Kunj Appartment, 25 I.P. Extn. Patparganj, Delhi-110092. Printed at : Bookman Printers, A-121, Vikas Marg, Shakarpur, Delhi-110092.
Editor : Lalit Garg

समृद्ध सुखी परिवार का अंक नियमित प्राप्त हो रहा है। कागज, प्रिंटिंग, साज सज्जा से लेकर पठनीय सामग्री बेजोड़ है। विषयों का चयन सामयिक एवं संग्रहणीय है। वास्तव में यह पत्रिका संपूर्ण जैन समाज का प्रतिनिधित्व करती है। पत्रिका उपलब्ध करवाने के लिए हृदय से कृतज्ञता।

–लाजपतराय जैन
142, मॉडल टाउन, हांसी

समृद्ध सुखी परिवार पत्रिका निरंतर प्राप्त हो रही है, तदर्थ अनेक धन्यवाद। जनवरी-2011 का अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय अन्य अंकों की भांति पठनीय है एवं जैन साधुओं एवं साध्वियों की पैदल यात्राओं, विशेषकर गणि राजेन्द्र विजयजी की उपयोगी यात्राओं की पूरी जानकारी देती है। अन्य सभी विद्वानों के लेख एवं कविताएं उत्तम है। लेख-बहुआयामी है। पत्रिका की साज-सज्जा श्रेष्ठ है। आपको तथा संपादक मंडल को साधुवाद।

–प्रो. महेन्द्र रायजादा
5-ख-20, जवाहर नगर, जयपुर-4

समृद्ध सुखी परिवार पत्रिका का जनवरी-2011 अंक पाकर उपकृत हुआ। पत्रिका हर दृष्टि से उत्कृष्ट है। उद्देश्यपूर्ण सार्थक सामग्री एवं आकर्षक गेटअप, उत्तम छपाई, सभी कुछ सुंदर। हार्दिक बधाई।

–डॉ. सुनील कुमार अग्रवाल
स्वप्निल सदन, रानीबाग, सुभाष रोड
चंदौसी, मुरादाबाद-202412 (उ.प्र.)

पहले 'श्री विजय इन्द्र टाइम्स'
और अब परिवर्तित नाम के साथ
'समृद्ध सुखी परिवार'!
सुन्दर...अप्रतिम...अद्वितीय!!
आप बधाई के पात्र हैं।
आज हमारा सोच, हमारे विचार,
हमारी मान्यताएं, हमारे मूल्य
सभी कुछ तो बदलते जा रहे हैं।
परिवर्तन से मेरा विरोध नहीं है,
मगर बदलाहट जब सिर्फ अधोगति हो,
प्रश्न हमारे मूल्य,
हमारी संस्कृति,
हमारे रूप व आकार को खोना हो तो
उस बदलाहट का
स्वागत करने की उत्सुकता नहीं
बल्कि सजगता होनी चाहिए।
ऐसी भयावह स्थिति में,
श्रद्धेय संत गणि राजेन्द्र विजयजी
के सुखद व समृद्ध प्रयास
हिम्मत देते हैं,
शुभ होने की संभावनाओं के प्रति
आश्वस्त करते हैं।
मेरा शत् शत् सादर प्रणाम
उन तक पहुंचाने का
विनम्र अनुरोध है।
एक बार पुनः
सुयोग्य संपादन के लिए
बधाई...

–राजकुमार कोचर
नाकोडा पैलेस, 18 शारदा नगर
अमरावती-444605 (महाराष्ट्र)

नव वर्ष की शुभकामना। 'समृद्ध सुखी परिवार' पत्रिका का जनवरी अंक मिला। अच्छी साज-सज्जा के साथ, अच्छे लेखों का प्रकाशन भी मिला। युवापीढ़ी के लिए सामयिक सामग्री का प्रबंध किया है, वह उचित है। विज्ञान के लेख भी बराबर देते रहें–नैतिकता को विज्ञान का सहारा मिलने से तर्कसंगतता आ जाती है।

–डॉ. महावीरराज गेलड़ा
5, च-20, जवाहर नगर
जयपुर-302004 (राजस्थान)

समृद्ध सुखी परिवार' का जनवरी-2011 अंक मिला। देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इतना आकर्षक मोहक अंक देश में अन्य कोई नहीं, एकदम साफ-सुथरा, मन को भा गया, आपके सौंदर्य बोध को बार-बार बधाई।

अंक में सभी लेख प्रेरणापद हैं। वे सकारात्मक विचार देते हैं, प्रेरित करते हैं, यदि संपूर्ण पत्रिका की इस आधार पर समीक्षा करने बैठूंगा तो पुरा तीन पृष्ठ का आलेख बन जायेगा। आपने भारतीय और विदेशी चिंतकों को एक जगह बैठा कर पत्रिका को विचारों की गंगा बना दिया है। आपका श्रम सार्थक हुआ। वह दिन दूर नहीं जब देश के मूर्धन्य विद्वानों में पत्रिका पर चिंतन मनन प्रारंभ होगा। मंगलकामनाओं सहित।

–सत्यनारायण भटनागर
2, एम.आई.जी., देवनारायण नगर
रतलाम-457001 (म.प्र.)

समृद्ध सुखी परिवार का जनवरी अंक मिला, आभार। स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए चलाया गया आपका यह अनुपम अनुष्ठान जन-जन के लिए शुभ-लाभ का कारक हो हमारी (शब्द प्रवाह परिवार) मंगलकामनाएं आपके साथ है।

–संदीप 'सृजन'
ए-99, व्ही. डी. मार्केट, उज्जैन-456006

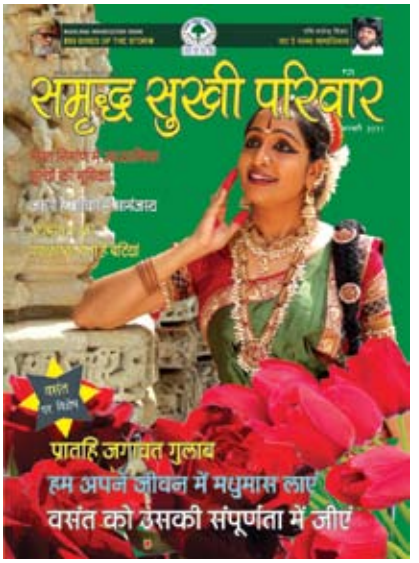

'समृद्ध सुखी परिवार' का
हर अंक पठनीय है, रमणीय है।
लेख, आलेख, कविताएं
रोचक हैं, संग्रहणीय है।
हर पृष्ठ का संयोजन
हर दृष्टि से प्रशंसनीय है
पत्रिका का हर शब्द
जीवन में अनुकरणीय है।
कितनी करें प्रशंसा
उपमाएं अवर्णनीय हैं।
सचमुच आपके प्रयास
वंदनीय हैं, वंदनीय हैं।

–वीरेन्द्र जैन
सीनियर एम.आई.जी.-7
जनता कॉलोनी,
मंदसौर-452001 (म.प्र.)

आपकी सुंदर और प्रतिष्ठित पत्रिका 'समृद्ध सुखी परिवार' का अद्यतन जनवरी-2011 अंक मिला, आभारी हूं। यह अंक भी मैंने आद्योपांत देखा।

सभी लेख आदि अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्द्धक लगे। आपकी समाज उद्धार की कोशिश और समाजसेवा का यह स्वरूप सराहनीय है, कृपया बनाये रखें।

–कृष्णकुमार ग्रोवर
पूर्व सचिव, संसदीय
राजभाषा समिति
एफ-बी/16, टैगोर गार्डन,
नई दिल्ली-110027

पत्रिका का जनवरी-2011 अंक मिला। पढ़कर हृदय गद्‌गद् हो गया। एक अंतराल के बाद लकीर से हटकर विषयवस्तु के दर्शन हुए। आप हमारी संस्कृति के सच्चे उपासक हैं या जाग्रत प्रहरी है, शायद दोनों हैं।

–मोहनलाल मगो
पी-65, पाण्डव नगर,
मयूर विहार-1
दिल्ली-110091

संपादकीय

भ्रष्टाचार का गरल : निजात नहीं सरल

चाणक्य ने कहा था कि जिस तरह अपनी जिह्वा पर रखे शहद या हलाहल को न चखना असंभव है, उसी प्रकार सरकारी कोष से संबंधित व्यक्ति राजा के धन का उपयोग न करे, यह भी असंभव है। जिस प्रकार पानी के अन्दर मछली पानी पी रही है या नहीं, जानना कठिन है, उसी प्रकार राज कर्मचारियों के पैसा लेने या न लेने के बारे में जानना भी असंभव है। आज जबकि चहूं ओर भ्रष्टाचार की चर्चा है, हमें उपरोक्त कथन को ध्यान में रखना होगा। 2-जी स्पेक्ट्रम के 22000 करोड़ रुपये की अनियमिताओं के साथ-साथ अनेक भ्रष्टाचार के मामले सम्पूर्ण राष्ट्रीय गरिमा एवं पवित्रता को धूमिल किये हुए है।

भारत विकास या आगे बढ़ने के दृश्यों के बीच में कितना पीछे होता जा रहा है, सहज की महंगाई, भ्रष्टाचार, सामाजिक-आर्थिक अन्याय एवं बेरोजगारी की विभीषिका से अन्दाज लगाया जा सकता है। प्रधानमंत्री ने हाल ही में भ्रष्टाचार को मुद्रास्फीति के साथ भारत की विकास दर में सर्वोच्च रुकावट माना है। यह देश के सर्वोच्च कार्यकारी द्वारा भारत में गिरती नैतिकता की महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति है। उनके अनुसार सरकार का हर स्तंभ अभी भ्रष्टाचार की काली छाया से ग्रस्त है।

भ्रष्टाचार को केवल आर्थिक अनियमितता मानने से भी स्थितियां बहुत बिगड़ी है। भ्रष्टाचार एक सामाजिक अपराध भी है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) ने अपने पांच साल पूरे किये हैं। मनरेगा भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। अगर देश के निर्धनतम समुदाय के हिस्से का निवाला छीनने में भी तंत्र को शर्मिंदगी महसूस नहीं होती है तो इससे घटती नैतिकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। मिलावटी डीजल, पेट्रोल की बिक्री रोकने के अपराध में महाराष्ट्र के उप जिलाधीश को जिंदा जला देने की घटना और कुछ नहीं बल्कि भारतीय तंत्र मे दुस्साहिता की अभिव्यक्ति ही है।

आज नैतिकता को भी को राजनीतिक दल अपने-अपने नजरिये से देखने को अभिशप्त हैं। भाजपा के लिए दिल्ली का भ्रष्टाचार अक्षम है और बैंगलोर का पुण्य। वहीं कांग्रेस के लिए ठीक इसका उलट। राजा की गिरफ्तारी भ्रष्टाचार समाप्त करने की दिशा में उठाया गया कोई मील का पत्थर नहीं है यह तो महज आम जनता को भ्रम में डालने की कलाकारी है। ऐसी गिरफ्तारी इस अनैतिक व्यवस्था में सेंध तो दूर की बात है अपना निशान तक नहीं छोड़ती।

राष्ट्रमंडल खेलों का 'भ्रष्टाचार' तो खेलों के शुरू होने से पहले ही प्रकाश में आ गया था। इसके बावजूद देश के राजनीतिज्ञों ने इतना साहस नहीं दिखाया कि वे इसके कर्ताधर्ताओं को तुरंत पदच्युत करते और भ्रष्टाचार की नींव पर खड़े इन खेलों का आयोजन रद्द कर देते। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है- क्या कोई सभ्यता नैतिक स्वास्थ्य के कानून की उपेक्षा कर सकती है और भौतिक वस्तुओं को भकोसते रहकर स्फीती की अंतहीन प्रक्रिया को जारी रखे रह सकती है? इस सवाल का जवाब ही आज की समस्याओं का हल है।

स्थितियां सन् 1974 में जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रारंभ किए गए आन्दोलन के समय से भी हजारों गुना बदतर हो चुकी हैं। यही भ्रष्टाचार केवल भारत की समस्या नहीं है, बल्कि समूची दुनिया इससे आक्रांत एवं पीड़ित है, सारी दुनिया में बदलाव की नई लहर उठ रही है। ट्यूनीसिया और मिस्त्र इसके ताजातरीन उदाहरण हैं। भारत की स्थितियां इससे भिन्न नहीं है। शोषित एवं वंचित वर्ग के बढ़ते असन्तोष को बलपूर्वक दबाने के प्रयास छोड़ कर भ्रष्टाचार मुक्त एवं सामाजिक समरसता वाले भारत के निर्माण की दिशा में प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है,। हमारे राष्ट्र की लोकसभा का यही पवित्र दायित्व है तथा सभी प्रतिनिधि भगवान् और आत्मा की साक्षी से इस दायित्व को निष्ठा व ईमानदारी से निभाने की शपथ लें। भ्रष्टाचार के मामले में एक-दूसरे के पैरों के नीचे से फट्टा खींचने का अभिनय तो सब करते हैं पर खींचता कोई भी नहीं। रणनीति में सभी अपने को चाणक्य बताने का प्रयास करते हैं पर चन्द्रगुप्त किसी के पास नहीं है। घोटालों और भ्रष्टाचार के लिए हल्ला उनके लिए राजनैतिक मुद्दा होता है, कोई नैतिक आग्रह नहीं। कारण अपने गिरेबार में तो सभी झांकते हैं वहां सभी को अपनी कमीज दागी नजर आती है, फिर भला भ्रष्टाचार से कौन निजात दिरायेगा?

कैसी विडम्बना है कि आजादी के बाद 63 वर्षों में भी हम अपने आचरण और काबिलीयत को एक स्तर तक भी नहीं उठा सके, हममें कोई एक भी काबिलीयत और चरित्र वाला राजनायक नहीं है जो भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था निर्माण के लिये संघर्षरत दिखे। यदि हमारे प्रतिनिधि ईमानदारी से नहीं सोचेंगे और आचरण नहीं करेंगे तो इस राष्ट्र की आम जनता सही और गलत, नैतिक और अनैतिक के बीच अन्तर करना ही छोड़ देगी। एक तरह से यह सोची समझी रणनीति के अन्तर्गत आम-जन को कुंद करने की साजिश है। राष्ट्र में जब राष्ट्रीय मूल्य कमजोर हो जाते हैं और सिर्फ निजी हैसियत को ऊँचा करना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है तो वह राष्ट्र निश्चित रूप से कमजोर हो जाता है और आज हमारा राष्ट्र कमजोर ही नहीं, जर्जर है।

कैसी विडम्बना है कि आजादी के बाद 63 वर्षों में भी हम अपने आचरण और काबिलीयत को एक स्तर तक भी नहीं उठा सके, हममें कोई एक भी काबिलीयत और चरित्र वाला राजनायक नहीं है जो भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था निर्माण के लिये संघर्षरत दिखे। यदि हमारे प्रतिनिधि ईमानदारी से नहीं सोचेंगे और आचरण नहीं करेंगे तो इस राष्ट्र की आम जनता सही और गलत, नैतिक और अनैतिक के बीच अन्तर करना ही छोड़ देगी।

वल्लभ उवाच

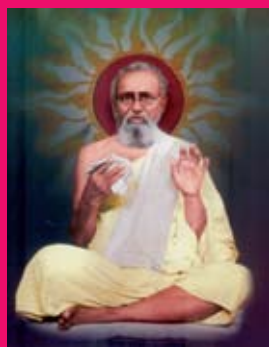

सत्संग की महिमा

आजकल लोग लाभ की बात को जल्दी ग्रहण कर लेते हैं और नुकसान की बात हो, पैसा खर्च करना पड़ता हो या समय देना पड़ता हो, ऐसी बात जरा भी सुनना नहीं चाहते। आप या आपके घर में कोई बीमार हो जाता है तो आप स्वयं रोग के कारण, निदान और निवारण के उपाय से अनभिज्ञ होने से वैद्य, डॉक्टर या हकीम के पास जाकर राय लेते हैं। आपको किसी पर मुकद्दमा चलाना हो या कोई जबर्दस्त आदमी आप पर जुल्म या अन्याय करता हो तो उसे मिटाने हेतु आप स्वयं कानून के जानकार न होने से वकील या न्यायाधीश के पास जाते हैं। आपको कोई मकान बनाना होता है तो आप किसी राजमिस्त्री के पास जाकर सलाह लेते हैं। वैसे ही आपको अपना जीवन सुखी, उन्नत और प्रशस्त बनाना हो तो त्यागी साधुओं की संगति में जाकर उनके वचन सुनना और उनसे उपाय पूछना जरूरी है। सत्पुरुषों की संगति के बिना मनुष्य में विवेक पैदा नहीं हो सकता। तुलसीदास कहते हैं– **''बिनु सत्संग विवेक न होई।''**

अत: अपने जीवन में धर्म-अधर्म, हिताहित और कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक प्राप्त करने के लिए संत पुरुषों का समागम बहुत ही लाभदायक और आवश्यक है। सत्संगति से लाभ का सरल शब्दों में कवित्त सुनिए–

ज्ञान बढ़े गुणवान की संगत, ध्यान बढ़ै तपसी संग कीने।
मोह बढ़े परिवार की संगत, लोभ बढ़े धन में चित्त दीने।
क्रोध बढ़े नर मूढ़ की संगत, काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि, विवेक, विचार बढ़ै, कवि 'दीन' सुसज्जन संगत कीने।।

वास्तव में, मनुष्य के संमार्ग पर जाने के लिए सत्संग बड़ा लाभदायक है, भौतिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी। इसीलिए नीतिज्ञों ने एक स्वर से सत्संगति की प्रशंसा की है। सत्संगति बुद्धि की जड़ता दूर करके ज्ञान का प्रकाश भर देती है, वाणी में सत्य का सिंचन करती है, सम्मान और उन्नति की ओर मनुष्य को ले जाती है, सर्व दिशाओं में यश फैलाती है, श्रीवृद्धि भी करती है, भला बताइए, सत्संगति मनुष्यों को क्या नहीं बना देती? इसीलिए तुलसीदास जोर देकर कहते हैं–

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध।।

अगर जीवन संत समागम के थोड़े से क्षण मिल जाएं तो वे सारे ही जीवन को बदल देते हैं। वाल्मीकि लुटेरे को संत नारद का थोड़ा सा ही सत्संग मिला था, जिससे उसका जीवन बदल गया और वह लुटेरे से ऋषि बन गया। वर्षों से खूंख्वार और नास्तिक बने हुए प्रदेशी राजा की खराब जिंदगी केशीश्रमण की एक ही बार की अल्पसमय की संगति ने बिल्कुल बदल दी। वह नास्तिक से आस्तिक बना और उसकी स्वार्थी तथा खूंख्वार बुद्धि परमार्थी और सात्त्विक बन गई। 1141 व्यक्तियों की हत्या करने वाले नरसंहारक अर्जुनमाली का जीवन पहले राजगृही के सुदर्शन श्रमणोपासक और बाद में भगवान महावीर के थोड़े से समय के सत्संग से बदल गया। वह क्रूर से क्षमाधारी, पापी से धर्मात्मा, नरसंहारक से नरोद्धारक पतितपावन मुनि बन गया। अंगुलिमाल जैसे लुटेरे और हत्यारे को भगवान बुद्ध की एक बार की संगति ने धर्मात्मा और नम्र संत बना दिया। राजगृही के कालसौकरिक (कसाई) के पुत्र सुलस ने अभयकुमार मंत्री की सत्संगति पारकर वंश परंपरागत पशुवध का धंधा छोड़ दिया। उसके पिता और अन्य संबंधियों के बहुत मनाने-समझाने पर भी वह विचलित न हुआ। वह सत्संगति का अचूक प्रभाव नहीं तो और क्या था?

सत्संगति से भौतिक लाभ तो अनेक हैं। साधु पुरुषों की संगति से गृहस्थ जीवन के पारिवारिक कलह से लेकर परिवार के किसी व्यक्ति के बुरे स्वभाव को मिटाने तक की गुत्थी सुलझ जाती है। सामाजिक जीवन में उपस्थित होने वाले अटपटे विकट प्रश्न भी संत पुरुषों की संगति से मिनटों में हल होते देखे गए हैं। और तो और, श्रेणिक राजा जैसे अनेक राजाओं के क्रोधावेश में आकर अंत:पुर को जला बैठने तक का विचार भगवान महावीर जैसे महापुरुषों के तनिक सत्संग से पलट जाता है।

सत्संग से नैतिक लाभों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। शराब, शिकार, मांसाहार, जुआ, व्यभिचार, चोरी, भांग, गांजा, सुलफा आदि नशीली वस्तुओं के सेवन आदि से किसी भी दुर्व्यसन में फंसा हुआ और लूट, डाका, हत्या आदि करने वाला कैसा भी पापी धार्मिक बनकर नीतिमय जीवन बिताने लगता है। इसीलिए कहा है–

लाखों पापी तिर गए, सत्संग के प्रताप से।
क्षण में बेड़ा पार है, सत्संग के प्रताप से।।

क्या है विश्व-शांति ?

जगद्गुरु कृपालु महाराज

विश्व-शांति में दो शब्द हैं–एक विश्व और दूसरा शांति। हमें ये समझना होगा कि विश्व का भावार्थ क्या है? और शांति का भावार्थ क्या है।

विश्व- तीन पदार्थों के सम्मिश्रण को विश्व कहते हैं। परमात्मा, जीवात्मा, माया तीनों को अलग-अलग करके बोल देते हैं। एक जीव है, एक भगवान है और एक माया है।

हिन्दू फिलॉसफी के अनुसार इस विश्व में भगवान व्याप्त हैं। भगवान ने माया के द्वारा यह विश्व बनाया है और भगवान विश्व में व्याप्त ही नहीं हो गया, अपितु वो विश्व रूप हो गया- यह कहा जाता है, लेकिन यह भगवान अव्यक्त है, दिखाई नहीं पड़ता। अब दूसरी पर्सनैलिटी है, इस विश्व में जीव, ये दिखाई पड़ते हैं, अनुभव में आते हैं। वृक्ष से लेकर मनुष्य तक ये सब हम लोग देखते हैं। और तीसरी चीज है माया। जो आप पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि देखते हैं जो जड़ है निर्जीव वस्तुएं सब माया का विकार है। इन तीनों के मिश्रण का नाम है विश्व।

इस विश्व की शांति हम चाहते हैं। इस विश्व में जड़ वस्तु की तो कोई शांति होती नहीं कि कोई मिट्टी अशांत है, उसको शांत करना है और भगवान की भी शांति नहीं करना है क्योंकि वह तो नित्य आनंद देने वाला परिपूर्ण है। भगवान और आनंद पर्यायवाची ही है। रसो वै स:। इसलिए भगवान को भी शांति की अपेक्षा नहीं अब एक जीव बचा।

अपनी हिन्दू फिलॉसफी के अनुसार अनादिकाल से भगवत्बहिर्मुख होने के कारण जीव अशांत है। अगर कोई वैदिक फिलॉसफी नहीं भी मानता तो इतना तो मानता है कि जीव अशांत है, दुखी है, अतृप्त है, अपूर्ण है। क्यों है? कब से है? ये भले ही नहीं जानता। तो विश्व शांति का मतलब है विश्व में रहने वाले मनुष्यों की शांति। उनको शांति मिले। सबमें एक दूसरे के प्रति दैवी गुण, सात्विक गुण आएं- दया, एकता, परोपकार और भाईचारा हो, सबमें मित्रता हो। ■

दिशाबोध

गणि राजेन्द्र विजय

अहिंसा और पर्यावरण

अनादिकाल से सारा संसार जड़ और चेतन के आधार पर चल रहा है। प्रकृति अपने तालबद्ध तरीके से चलती है। दिन और रात तथा वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर छह ऋतुएं हैं जो एक के बाद एक क्रमशः समय पर आती हैं और चली जाती हैं। गर्मी के बाद वर्षा और वर्षा के बाद सर्दी न आए तो संसार का संतुलन बिगड़ जाता है, जनता में हाहाकार मच जाता है। प्रकृतिजन्य तमाम वस्तुएं अपने नियमों के अनुसार चलती है तभी संसार में सुख, शांति और अमन चैन रहता है। परन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो प्रकृति की इस व्यवस्था में हस्तक्षेप करता है। प्राकृतिक नियमों को जानता-बूझता हुआ भी अपनी अज्ञानतावश उनका उल्लंघन करता है और अव्यवस्था पैदा करता है। वह वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर अथवा अपने असंयम से प्रकृति के इस सहज संतुलन को बिगाड़े का खतरा पैदा करता है।

इसी के फलस्वरूप कहीं अतिवृष्टि, कहीं बाढ़ और कहीं भूकम्प तो कहीं तूफान और सूखा- ये सब प्राकृतिक प्रकोप पैदा होते हैं। इससे प्रकृति का जो सहज पर्यावरण है उसका संतुलन बिगड़ जाता है। इन सब प्राकृतिक प्रकोपों के कारण लाखों आदमी काल के गाल में जाते हैं, लाखों बेघरबार हो जाते हैं, हजारों मनुष्य पराधीन और अभाव पीड़ित होकर जीते हैं। यह सारी विषमता और अव्यवस्था मनुष्य के द्वारा प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करने के परिणामस्वरूप पैदा होती है। कभी तो वह समुद्र में बम-विस्फोट करता है, कभी जहरीली गैस छोड़कर अपनी ही जाति का सफाया करने पर उतारू हो जाता है। कभी उसके द्वारा उपग्रह छोड़ने के भयंकर प्रयोगों के कारण अतिवृष्टि, आंधी, तूफान या भूस्खलन आदि प्राकृतिक, आंधी, तूफान या भूस्खलन आदि प्राकृतिक प्रकोप होते हैं।

जैन धर्म के युगादि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर तक सबने प्रकृति के साथ संतुलन रखने तथा पृथ्वीकायिक आदि समस्त जीवों के साथ परस्पर उपकार करने हेतु संयम का उपदेश दिया है। उन्होंने जैसे जीवकाय के प्रति संयम रखने की प्रेरणा दी है वैसे अजीवकाय (जड़ प्रकृतिजन्य वस्तुओं या पुदग्लों) के प्रति भी संयम रखने की खास प्रेरणा दी है।

परन्तु वर्तमान युग का अधिकांश मानव-समूह इस तथ्य को नजरअंदाज करके जीवकाय और अजीवकाय दोनों प्रकार के पर्यावरण संतुलन के लिए उपयोगी सजीव-निर्जीव पदार्थों के प्रति अधिकाधिक असंयम करके, अंधाधुंध रूप से संतुलन बिगाड़ने का पराक्रम करके प्रदूषण फैला रहा है।

वायु, पानी, मिट्टी, पेड़-पौधे और जानवर सभी मिलकर एक सुन्दर पर्यावरण का स्वच्छ वातावरण की रचना करते हैं। ये सभी घटक पारस्परिक संतुलन बनाये रखने के लिए एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जब (भौतिक) विकास के लिए प्रकृति का सीमा से अधिक उपयोग किया जाता है, तब हमारे पर्यावरण या वातावरण में परिवर्तन होता है। यदि इन परिवर्तनों की प्रक्रिया का प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं बिठाया जाता और परिस्थिति-विज्ञान संबंधी संतुलन कायम नहीं रखा जाता तो उससे न केवल विकास-व्यय (विकास कार्यों में समय, शक्ति और नैतिकता के अपव्यय) के बढ़ने का खतरा पैदा होता है, बल्कि उससे ऐसा असंतुलन पैदा हो सकता है जिससे पृथ्वी पर मनुष्य जाति का जीवन खतरे में पड़ सकता है।

यह एक निश्चित तथ्य है कि प्राकृतिक पदार्थों तथा जीवन का अस्तित्व है, चेतना है, ऐसे सजीव पदार्थों का मानव-जीवन के साथ गहरा संबंध है।

भगवान महावीर ने कहा है- जो व्यक्ति आध्यात्मिक धर्म का आचरण (साधना) करना चाहता है उसके लिए निम्नांकित पांच स्थानों का आश्रय (आलम्बन) लेना बताया गया है- जैसे कि षट्कायिक जीव, गण, शासक, गृहपति और शरीर। इसमें एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के समस्त जीवों के आश्रय को प्राथमिकता दी गई है।

दूसरे धर्म/दर्शन जहां पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीवन का अस्तित्व प्रायः स्वीकार नहीं करते वहां जैन धर्म ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जीवन का अस्तित्व स्वीकार किया है। आज का जीव-विज्ञान भी इस निष्कर्ष से सहमत है कि पृथ्वी, जल और वनस्पति में भी जीवन है उसमें भी सुषुप्त चेतन है, वे भी हर्ष-शोक का अनुभव करते हैं।

जैन आगमों में तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय इन पांच स्थावर जीवों के बारे में बहुत विस्तार से निरूपण किया गया है। वे जीव कहां-कहां रहते हैं? उनका शरीर किस-किस प्रकार का है। वे कैसे-कैसे श्वासोच्छवास आहार आदि ग्रहण करते हैं? उनका विकास-ह्रास कैसे-कैसे होता है? उनकी उत्कृष्ट आयु कितनी-कितनी है? उनमें कितनी इन्द्रियां है? कितने प्राण है? इत्यादि सभी प्रश्नों पर बहुत गहराई से विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उनके साथ मानव-जीवन का परस्पर उपकार और गहन संबंध भी बताया है।

भगवान महावीर ने जीव और अजीव दोनों प्रकार के पदार्थों के प्रति 17 प्रकार का संयम बताया है। वे इस प्रकार हैं-

1. पृथ्वीकाय संयम 2. अपकाय संयम 3. तेजस्काय संयम 4. वायुकाय संयम 5. वनस्पतिकाय संयम 6. दीन्द्रिय (जीव) संयम 7. त्रीन्द्रिय (जीव) संयम 8. चतुरिन्द्रिय (जीव) संयम 9. पंचेन्द्रिय (जीव) संयम 10. अजीवकाय संयम 11. प्रेक्षा-संयम 12. उपेक्षा-संयम 13. अत्यहत्य-संयम 14. प्रमार्जना-संयम 15. मनः संयम 16. वचन संयम 17. काय संयम ।

इन 17 प्रकार के संयमों का अर्थ ही पृथ्वीकाय आदि 9 प्रकार के जीवों के प्रति संयम रखना, उन जीवों को कष्ट हो, त्रास हो, ऐसी प्रवृत्ति न करना है। अजीवकाय-संयम में प्रकृतिजन्य सभी निर्जीव पदार्थों के प्रति संयम प्रेरणा है। प्रेक्षा, उपेक्षा, अपहृत्य एवं प्रमार्जना रूप संयम में प्रत्येक प्रवृत्ति करते समय देखें, पूर्वापर का परिणाम पर विचार करें। जहां या जिस स्थान से अथवा जिस प्रवृत्ति से जीव हिंसा अधिक हो, जिससे अपने स्वास्थ्य, परिवार, संघ, राष्ट्र या समाज की हानि हो, उस प्रवृत्ति के प्रति उपेक्षा करे। जहां खींचना, खोदना, रगड़ना आदि घर्षण प्रवृत्ति हो वहां भी संयम रखें, ताकि किसी जीव को पीड़ा न हो। मन से दूसरों को मारने, सताने, उत्पीड़न करने का विचार न करे, वचन से भी श्राप आदि या क्रोधादिपूर्वक आघातजनक वचन न बोले, न ही काया से अंगोपांगों से किसी पर प्रहार करने आदि हिंसाजनक कृत्य चेष्टा करें।

आज विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए खासकर पत्थर के कोयलों के लिए पृथ्वी का खनन और जबरदस्त दोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिकों का मत है कि यदि इसी प्रकार खनिज पदार्थों का उपयोग किया गया तो कुछ ही वर्षों में उसके भंडार निःशेष हो जाएंगे। संसार में जब से औद्योगीकरण की लहर आई है, पृथ्वी का पेट फाड़कर कोयले निकालने

से, पत्थर के कोयलों के जलाने से उनकी धूल, कार्बनडाई ऑक्साइउ, सल्फरडाई ऑक्साइड तथा कुछ आर्गेनिक गैसों के रूप में प्रदूषणकारी पदार्थों की भरमार हो गई है। इस प्रकार बारूदों के द्वारा जमीन में विस्फोट किया जाता है जिसके कारण वह जमीन नीचे धंसती जाती है। कहीं इसी के फलस्वरूप भूकम्प, नदियों में बाढ़, तूफान, समुद्र में मछलियों का मर जाना, धरती का खराब हो जाना आदि प्रकोप हो जाते हैं।

इन सब दुष्कृत्यों से दूर रहने के लिए भगवान महावीर ने सद्गृहस्थों के लिए स्फोटकर्म (फोड़ी कम्मे) यानी जमीन में विस्फोट करने के खर कर्म का सर्वथा निषेध किया था। इसी तरह पृथ्वीकायिक (पृथ्वी जिसका शरीर है उन जीवों की (नष्ट करने, गहरे खोदने, फोड़ने आदि के रूप में) हिंसा का निषेध करते हुए कहा था-'मेधावी पुरुष हिंसा के दुष्परिणाम को जानकर स्वयं पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ न करे, न ही दूसरों से उसका समारम्भ (घात कराए) और न समारम्भ करने वाले का अनुमोदन करे।

मनुष्य पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के साथ केवल पृथ्वीकाय जीवों की ही नहीं, अन्य अनेक तदाश्रित या तत्संबंधित प्राणियों की हिंसा करता है। अत: पृथ्वीकायिक हिंसा से मानहानि की ओर इंगित करते हुए, उन्होंने कहा था- 'नाना प्रकार के शस्त्रों (द्रव्य शस्त्रों तथा भावशस्त्रों से) पृथ्वी संबंधी हिंसाजन्य कर्म में व्याप्त होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करने वाला व्यक्ति (न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है अपितु) अन्य अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा करता है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जैन धर्म जहां प्राणिमात्र की दृष्टि से प्राणि विनाश और जीवसृष्टि की मानहानि की दृष्टि से अहिंसा और संयम पर विचार प्रस्तुत करता है, वहां विज्ञान उस पर प्रदूषण एवं प्राणि जगत के लिए दु:ख वृद्धि तथा केवल मनुष्य-मात्र की दृष्टि से विचार करता है। किन्तु परिणाम की दृष्टि से दोनों अन्ततोगत्वा एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। ■

संस्कार

आचार्य महाश्रमण

नमस्कार महामंत्र
संप्रदाय की प्रतिबद्धता से मुक्त मंत्र

अध्यात्म की साधना के अनेक प्रयोग हैं। उनमें आराध्य-भक्ति भी एक सुन्दर प्रयोग है। जो आत्माएं परम/विशिष्ट शक्ति संपन्न हैं, उनका श्रद्धायुक्त स्मरण और निस्वार्थ समर्पण साधक की चेतना को उन्नति की ओर ले जाता है।

नमस्कार महामंत्र एक विशिष्ट मंत्र है। उसकी विशिष्टता के दो कारण हैं। पहला कारण है—यह वीतरागता पर आधारित है अथवा यों कहा जा सकता है इसके केन्द्र में वीतरागता है। पहले पद में अर्हतों को नमस्कार किया गया है। वे पूर्णतया वीतराग होते हैं। दूसरे पद में सिद्धों को नमस्कार किया गया है। वे भी पूर्णतया वीतराग होते हैं। तीसरे पद में आचार्यों को नमस्कार किया गया है। वे वीतरागता के साधकों के मार्गदर्शक और अनुशास्ता होते हैं। चौथे पद में उपाध्यायों को नमस्कार किया गया है। वे वीतराग वाणी/आगमों के अध्येता और अध्यापयता होते हैं। पांचवें पद में लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार किया गया है। वे वीतराग अथवा वीतरागता के साधक होते हैं। पांचों पद वीतरागता से संबंद्ध हैं अत: नमस्कार-महामंत्र के जप के माध्यम से साधक वीतरागता की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास करता है।

दूसरा कारण है—नमस्कार महामंत्र व्यक्तिपरक नहीं गुणपरक है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। गुण संपन्न आत्माओं को नमस्कार किया गया है। प्रथम पद में अर्हतों को नमस्कार किया गया किन्तु ऋषभ, महावीर अथवा सीमंधर

प्रभु आदि का नाम नहीं लिया गया। दूसरे पद में सिद्धों को नमस्कार किया गया किन्तु शांति अथवा पार्श्व आदि का नाम नहीं लिया गया। इसी प्रकार अवशेष पदों में किसी का नाम नहीं रखा गया। पांचवें पद में तो 'लोए सव्व साहूणं' कहकर उदारता और व्यापकता के विराट रूप को उजागर कर दिया।

पांच पदों को दो पदों में भी समाविष्ट किया जा सकता है। णमो सिद्धाणं के अन्तर्गत सारी मुक्त आत्माएं आ जाती है और णमो लोए सव्व साहूणं में अर्हत् आचार्य और उपाध्याय भी समाविष्ट हो सकते हैं।

नमस्कार-महामंत्र का जो स्वरूप वर्तमान में प्राप्त है। उसमें पांचवें पद में पाठान्तर भी है। 'णमो लोए सव्व साहूणं' पाठ भी मिलता है और 'णमो सव्व साहूणं' पाठ भी मिलता है।

नमस्कार-महामंत्र की रचना किसने की? इस विषय में इतना कहा जा सकता है, यह प्राचीन रचना है, आगम साहित्य में प्राप्त है। गौतम आदि गणधरों में से किसी के द्वारा निर्मित होने की संभावना भी की जा सकती है। इससे अधिक निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन लग रहा है।

ज्ञानपूर्वक इस महामंत्र का जप किया जाए तो अनेक लाभ हो सकते हैं। पहला लाभ है, इससे वीतरागता की अनुमोदना होती है यानि वीतरागता की दिशा में कदम आगे बढ़ते हैं। किसी भी बात की अनुमोदना करने का अर्थ है उसमें यत्किंचित सहभागी बन जाना। दूसरा लाभ है, आत्मा की मलिनता धुलती है, वह शुद्ध बनती है। तीसरा लाभ है, जपकाल में व्यक्ति अनेक-अनेक सांसारिक कार्यों और पापों से सहजतया बच जाता है।

चौथा लाभ है, विघ्न बाधाओं का निराकरण हो सकता है। प्रात: उठने के बाद, रात्रि में शयन से पूर्व, भोजन से पूर्व तथा यात्रा आदि के लिए प्रस्थान से पूर्व नमस्कार महामंत्र का जप किया जाना चाहिए। इससे बार-बार वीतरागता की प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। यह महामंत्र भावशुद्धि का एक सुन्दर साधन है। अवस्था प्राप्त व अशक्त व्यक्तियों को तो अपने समय को सहज सार्थक बनाने के इस मंत्र का खूब जप करना चाहिए। यह विशुद्ध गुणा धारित और संप्रदाय की प्रतिबद्धता से मुक्त मंत्र है। इसलिए इसे असांप्रदायिक सार्वजनिक व सार्वजनीन मंत्र भी माना जा सकता है। ■

दुर्गेश मिश्र

पवित्र यज्ञ है विवाह

तजहु आसि निज निज गृह जाहूं।
लिखा न विधि वैदेही विवाहू।।

सीता स्वयंवर के समय जनक के इस कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज में विवाह का कितना महत्पूर्ण स्थान है, लेकिन आज विवाह–संस्कार विकार बन कर विषय–वासना प्रधान हो गया है।

मानव जीवन में विवाह और स्त्री और पुरुष के बीच यौन–सुख और संतानोत्पत्ति के लिए किया गया एक समझौता मात्र नहीं है, बल्कि यह मनुष्य जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसके बिना स्त्री या पुरुष अधूरा होता है। इतना ही नहीं बल्कि इससे समाज में उन्मुक्तता के स्थान पर मर्यादा बना रहती है।

हिन्दू धर्म के सोलह संस्कारों में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। हिन्दुओं में विवाह एक संविदा या अस्थायी बंधन नहीं है अपितु एक धार्मिक संस्कार है जो प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक है। विवाह के पश्चात ही मनुष्य जीवन के विस्तृत क्षेत्र में पदार्पण करता है। परिवार और वंश की वृद्धि विवाह के माध्यम से ही होती है। यह वह संबंध है जिसमें पुरुष और स्त्री को संतानोत्पत्ति करने की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है।

स्मृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि विवाह मात्र सेक्सुअल रिलेशन नहीं है। यह मानव समाज का वह मजबूत ढांचा है जिसके ताने–बाने में समाज के सभी रिश्ते–नाते की चादर बुनी हुई है। इसी के धरातल पर पति–पत्नी, भाई–बहन, दादा–दादी जैसे सभी संबंध खड़े हैं। यदि सामाजिक संरचना से विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार (जिससे सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग संस्कारित होते हैं) को थोड़ी देर के लिए हटा कर देखें तो चारों ओर अंधकार–ही–अंधकार नजर आयेगा। यहां कहने का तात्पर्य यह है कि हर व्यक्ति अपनी काम–वासना की पूर्ति के लिए दूसरे के पीछे भागेगा। ऐसे में संबंधों की अहमियत नहीं होगी। आदमी और पशु में कोई भेद नहीं रह जायेगा। यही कारण है कि हमारे मनीषियों ने विवाह को यज्ञ की संज्ञा देते हुए इसके आठ प्रकार बताये हैं जिसमें से एक प्रजापत्य विवाह वर्तमान समय में सबसे अधिक प्रचलित है। इसके अंतर्गत आनेवाली समस्त वैवाहिक विधियों का पालन किया जाता है।

धर्मशास्त्रों में विवाह को धार्मिक संस्कार मानते हुए इसे स्वर्ग का द्वार कहा गया है। इसमें धर्म का प्रधान स्थान होता है। यही कारण है कि विवाह हिन्दू-संस्कार का प्रधान अंग है। जिस प्रकार शरीर की संरचना को सीधा रखने के लिए रीढ़ की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह मानव समाज को सही ढंग से संचालित करने के लिए विवाह की आवश्यकता होती हैं, क्योंकि इसके बिना धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की कल्पना ही नहीं की जा सकती, यज्ञ, होम, वैदिक मंत्रों का पाठ, देवताओं का आह्वान, माता–पिता की रजामंदी व संगे–संबंधियों की उपस्थिति के मध्य वैवाहिक क्रिया संपन्न की जाती है। इस क्रिया से जहां दो अनजाने व्यक्तियों का जन्म–जन्मांतर का मिलन होता है, दो शरीर एक जान होते हैं और वे जीवन-पर्यंत सुख-दु:ख में एक दूसरे का साथ निभाने का संकल्प लेते हैं वहीं जीवनरूपी रथ के दो पहिये बन कर अपनी सामाजिक व पारिवारिक जिम्मेदारियों का सफलतापूर्वक संचालन करते हैं। हिन्दू समाज में पत्नी के बिना कोई भी धार्मिक कार्य संपन्न नहीं होता है। इसीलिए, भार्या धर्म–पत्नी कहलाती है। अत:, विवाह गृहस्थ जीवन की आधारशिला है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि विवाह एक पवित्र यज्ञ है। विवाह न करना अपने दायित्वों से पलायन करना है। जो व्यक्ति अविवाहित हैं, उन्हें धर्म–ग्रथों में अपूर्ण कहा गया है। वह किसी प्रकार के धार्मिक कार्य संपन्न नहीं कर सकता। अर्थात् पत्नी के बिना व्यक्ति यज्ञादि संपादन का अधिकारी नहीं होता है। रामायण में स्पष्ट संकेत है कि पत्नी के अभाव में मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाने श्रीराम को तत्कालीन पुरोहितों ने अश्वमेध यज्ञ करने से मना कर दिया और कहा कि सीता की प्रतिमा के बाद ही अवश्मेध यज्ञ का आयोजन हो सकता है। फलस्वरूप, श्रीराम को सीता की स्वर्णप्रतिमा की प्रतिष्ठापना करनी पड़ी थी। राजा जनक ने पाणिग्रहण के समय सीता के हाथ राम के हाथ में देते हुए कहा था– इदम् सीम यम् धर्म चरितौ। महाभारत में पत्नी को पुरुष का आधा भाग और सच्चा मित्र कहा गया है– अर्द्ध भार्यामनुव्यस्थ भार्या श्रेष्ठतं सखा।

पाणिग्रहण के धान का लावा अग्नि में डालते हुए पुरोहित वर-वधू से कहता है कि जिस प्रकार भड़भूजे की भट्‌ठी पर भूनने के बाद भी धान की भूसी लावे को छोड़ती नहीं बल्कि उनसे चिपके रहती है ठीक उसी तरह पति और पत्नी को विपत्ति के समय एक–दूसरे का हाथ थामे परिस्थितियों का धैर्य धारण कर सामना करना चाहिए।

विवाह के संबंध में अथर्ववेद की ऋचा में कहा गया है कि देवता भी पत्नी को प्राप्त करते थे– देवा अग्रेन्यपधन्त पत्नी: दो स्थूल शरीरों के नहीं बल्कि दो आत्माओं के पवित्र बंधन को विवाह कहते हैं। अत:, यह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। पति-पत्नी कालांतर में माता–पिता और दादा–दादी, नाना–नानी के रूप में अग्रसारित होते हैं तथा सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज के निर्माण में अपना सक्रिय सहयोग देते हैं। धर्मसूत्रों में पत्नी को धर्म, काम एवं मोक्ष का मुख्य कारण बताया गया है। पत्नी के अभाव में न तो पितृऋण को ही चुकाया जा सकता है और न ही किसी तरह के धार्मिक कर्तव्य का निर्वहण ही किया जा सकता है। अविवाहित व्यक्ति का परिवार और समाज में कोई स्थान नहीं होता। साथ ही उसे हमेशा शंका की दृष्टि से देखा जाता है।

विवाह जीवन के लंबे सफर में दो आत्माओं का अटूट सम्मिलन है। जहां आत्माओं का यह सुंदर मिलन नहीं वह सफल नहीं। आज के युग में इस पवित्र संस्कार को जहां एक ओर दहेज एवं कन्या भ्रूण हत्या जैसे राहु–केतु नामक राक्षस ग्रहण लगा रहे हैं वहीं लिव इन टुगेदर राक्षस ग्रहण लगा रहे हैं। वही लिव इन टुगेदर जैसी अव्यवस्था घुन का काम रही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइबर एवं पेज ने कहा है कि हिन्दू–धर्म में विवाह मनुष्य की सामाजिक स्थितियों का निर्धारण करता है। श्रीरामचरितमानस में बालकांड की एक कथा के अनुसार जनकपुर में सीता स्वयंवर के समय आमंत्रित राजा धनुष तोड़ने में जब असफल रहे तो सीता के विवाह को लेकर चिंतित जनक कहते हैं–

तजहु आसि निज निज गृह जाहूं। लिखा न विधि वैदेही विवाहू।।

इससे पता चलता है कि भारतीय समाज में विवाह का कितना महत्पूर्ण स्थान है लेकिन आज विवाह-संस्कार विकार बन कर विषय–वासना प्रधान हो गया है। आंतरिक गुणों की अनदेखी कर युवा पीढ़ी बहरी रंग रूप के भंवर में उलझ कर रह गई है। ■

बद्री नारायण तिवारी

गंगा-जमुनी तहजीब के रचनाकार

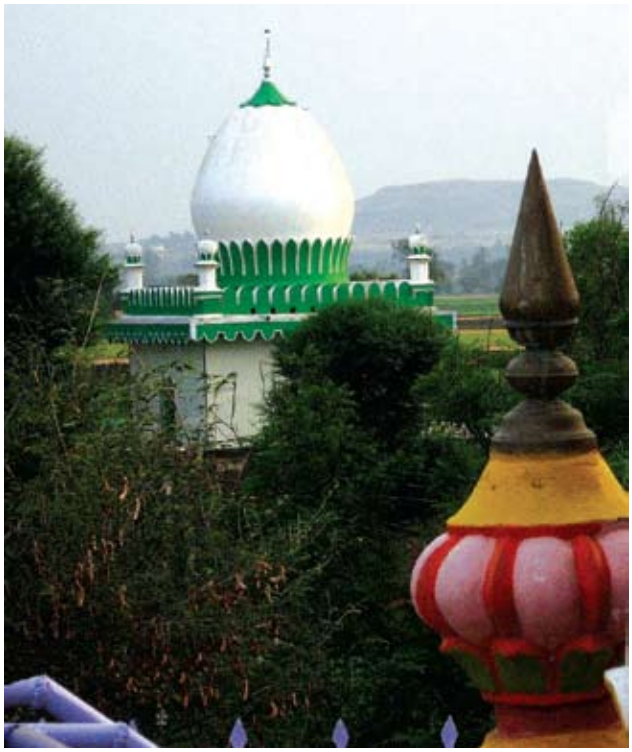

भारत पूरे विश्व में ही एक ऐसा देश है जहां विभिन्न धर्मों के अनुयायी रहते हैं। सभी धर्मावलम्बियों को अपने-अपने ढंग से पूजाघरों में धार्मिक कृत्य संपन्न करने यानी पूजा उपासना की आजादी है। अंग्रेजों ने फूट डालो शासन करो के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम को परस्पर लड़ाकर दंगे फसाद भी कराते रहते थे। मंदिरों में घंटा-घड़ियाल शंख बजाकर पूजा अर्चना कर अपने भगवान को रिझाते हैं तो मुसलमान मस्जिद में अजान लगा खुदा की महानता का उद्घोष करते हैं। जबकि देश में सभी मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे नमन करने योग्य हैं।

महान शायर अल्लाह इकबाल ने राम-रहीम और धर्म-मजहब को एक समान मानते हुए कहा था–

तुम राम कहो वे रहीम कहें मतलब तो उसी की चाह से है।
तुम दीन कहो वे ईमान कहें मतलब तो उसी की राह से है।।

फरज़ानउल्ला खां की अजान तथा शिवाले के गजर दोनों में शुभ प्रभातम् का संदेश चाहते हैं। उनकी प्रस्तुत पंक्तियां कहती हैं-

मस्जिद की अजां हो के शिवाले का गज़र हो।
अपनी तो ये हसरत है किसी तौर सहर हो।।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'सिद्धराज' नामक काव्य में, हिन्दू-मुसलमानों में मंदिर-मस्जिद का विवाद हो जाने पर मुगल शासन ने राजा जयसिंह द्वारा इसका समाधान इन शब्दों में किया था-

जाओ डर छोड़ तुम अपनी अजान दो,
और गा-बजाकर उतारे हम आरती।
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं,
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।।

शायद शादाब अमरोहवी प्रत्येक भारतीय का बस एक ही नारा बुलंद करना चाहते हैं जिसमें मंदिर, मस्जिद दोनों को अपना ही मानें–

हर हिन्द के वासी का बस एक ही नारा है,
मस्जिद भी हमारी है मंदिर भी हमारा है।।

इसी बात को लेकर जनाब तमन्ना जमाली कितने सुंदर शब्दों में कहते हैं कि जब मंदिर-मस्जिद दोनों ही हमारे हैं, दोनों में राम-रहीम का वास है तो इन पावन स्थानों को कैसे तोड़ा जा सकता है-

मंदिर मस्जिद तोड़ दें कैसे हैं वे हाथ।
राम रहीम की मर्यादा क्या देगी उनका साथ।।

वस्तुत: धर्म को आडम्बर की दृष्टि से तो पक्षी मनुष्य से कहीं अधिक अच्छे हैं। कविवर राजकुमार वर्मा के शब्दों में-

परिन्दों में कभी फिरका परस्ती क्यों नहीं होती।
कभी मंदिर में जा बैठे कभी मस्जिद में जा बैठे।।

हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने-अपने धर्मों का पालन करते हुए मानवता के धर्म को अपनाएं। मुसलमान रामायण-गीता का सम्मान करें और हिन्दू कुरान के प्रति इससे अधिक श्रेयस्कर मार्ग और क्या हो सकता है। इसी भावना को इन्द्रदेव भावरती ने कितने सुंदर शब्दों में गूंथा है-

मैं हिन्दू हूं, तू मुसलमान रहे,
शर्त ये है कि हर एक इंसान रहे।
मेरी गीता का सम्मान तू भी करे,
तेरी कुरआं पर मेरा भी ईमान रहे।।

इसी भावना को डॉ. आफताब अहमद नोमानी ने व्यक्त किया है-

दोस्तों ऐसी नई तस्वीरें हिन्दुस्तान हो।
एक तरफ गीता हो जिसमें एक तरफ कुरआन हो।।

इसी सद्भावना को परशुराम की पंक्तियों में कहा गया है कि जब मंदिर के राम और मस्जिद के रहमान एक ही हैं तो परस्पर दोनों क्यों लड़ रहे हैं-

छोटी-छोटी खुशियां अपनी छोटे-छोटे गम।
हम क्या जाने मुल्ला पंडित तेरे दीन धरम।।

आज से छ: शताब्दी पूर्व महान संत कवि कबीरदासजी ने हिन्दू मुसलमान दोनों को एक ही मार्ग का पथिक मानते हुए सद्गुरु का यथार्थवादी उपदेश दिया था-

हिन्दू तुरक की एक राह है सद्गुरु यहै बताई।
कहै कबीर सुनो भई साधो राम न कहेउ खुदाई।।

इसी भाव को दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हैं डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे सब को समान रूप में मानते हैं। इनमें राम, अल्लाह और महान गुरुओं का वास है। सभी भारत माता की संतान हैं। हमारे देश की सांझी तहजीब और सामाजिक संस्कृति का सजीव प्रमाण है, जिसको हिन्दू-मुसलमान ने सदियों से मिल-जुलकर विश्व का सबसे जीवंत त्यौहार बनाए रखा है। खड़ी बोली के कविवर अरुणजी के शब्दों में-

राम इन्हीं में अल्लाह इनमें, इनमें ही हैं गुरु सारे
सबकी पूजा धर्म हमारा, हमें न बांटे अब कोई।
हिन्दू मुस्लिम ईसाई सभी हैं मां के प्यारे
भारत माता के बेटों को, अब न लड़ाए कोई।।

हिन्दी के आदि कवि अमीर खुसरो ने अपने काव्य में होली की मस्ती को अपनी रचनाओं में पिरोया है। उसी परम्परा को जियो अजीजी की पंक्तियों में होली की रंगीन फुव्वारों में व्यक्त किया है-

कितनी दिलकश, कितनी रंगी, होली की चलती पिचकारी।
देवर की आंखों से देखो, भाभी लगती कितनी प्यारी।

युवा कवि मंजर भोपाली सद्भावना की कहानी को किस प्रकार लिखने का संकल्प लेते हैं-

इस जमीं पे लिखनी है प्रेम की कहानी।
प्यार के कटोरे में गंगा का पानी।।

मुस्लिम कवयित्री रेहाना 'आतिफ' के हृदय में अपने वतन परस्त भाइयों के प्रेम के रंग भी उभरने लगते हैं-

दिलों में कितने वफाओं के रंग भरती है,
कभी नजर से जो फागुन की ऋतु गुजरती है।

शायर जावेद आसी की ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारे भारत में ऐसा वातावरण बने जिसमें हिन्दू-मुसलमान मिलजुल कर रहें। दोनों एक-दूसरे के दु:ख दर्द का अनुभव करें। होली और ईद का खुशी से भरा दोनों त्यौहार मनाएं-

या रब हमारे मुल्क में ऐसा फिजां बने,
सब मिलके इत्तेहाद का परचम उठाएं हम।

हिन्दू को चोट आए तो मुस्लिम को दर्द हो,
मिलजुल के होली ईद की खुशियां मनायें हम।।

देश के सुप्रसिद्ध शायर साहिर लुधियानवी ने अंग्रेजों की दासता से मुक्त हो आजाद भारत की रेखांकित पंक्तियों में किस प्रकार देशप्रेम की हृदयस्पर्शी भावना को व्यक्त किया-

अब कोई गुलशन न उजड़े अब चमन आजाद है,
रूह गंगा की हिमालय का बादल आजाद है।
मस्जिदों में शंख बाजे मंदिरों में हो अजान,
शेख का धरम और दीने बरहमान आजाद है।।

इसी साझी सद्भावना यानी सम्प्रदायिक एकता को शायर मोहमिन काकोरिनी ने इन शब्दों में संजोया है-

गर तेरा इज्न हो तो ब्राह्मण करे वजू,
गंगा नहाए शेखू, बेकार जुस्तजू।

-मानस संगम
महाराज प्रयाग नारायण मंदिर (शिवाला)
कानपुर-208001 (उ.प्र.)

समाधान

आकांक्षा यादव

व्याधि निवारक है कत्थक

यदि शास्त्रीय नृत्य कत्थक में स्वस्थ रहने का राज छुपा है, तो भारतीय नृत्य की इस अद्भुत धरोहर से नई पीढ़ी को भी परिचित कराने की जरूरी है जो पाश्चात्य संस्कृति में ही अपना भविष्य खोज रही है।

भारत में शास्त्रीय नृत्य की काफी पुरानी परम्परा है। राजे-रजवाड़ों ने भी इसे खूब प्रोत्साहन दिया। नृत्य एक तरफ जहां कला के रूप में मनोरंजन का साधन है, वहीं दूसरी तरफ यह दवा भी है। इसके माध्यम से तमाम ऐसे रोग छूमंतर हो जाते हैं, जो कि दुसाध्य माने जाते हैं। कत्थक नृत्य तो इस मामले में वाकई अजूबा है, जो शरीर को राहत देने के साथ-साथ रोग निवारक का कार्य भी करता है। मुम्बई विश्वविद्यालय से नृत्य में विशारद की डिग्री हासिल कर कई मंचों पर शास्त्रीय नृत्य का प्रदर्शन करने वाली राष्ट्रीय स्तर की शास्त्रीय नृत्यांगना मनीषा महेश यादव कत्थक नृत्य के इस गुण को बकायदा लोगों पर अजमा भी रही है। गौरतलब है कि अपनी काबिलियत के चलते मनीषा यादव को फिल्म 'दिल क्या करे' में कोरियोग्राफी करने का भी मौका मिला।

मुम्बई में मनीषा हर प्रकार के लोक और शास्त्रीय नृत्य की शिक्षा भी देती हैं। मनीषा यादव की मानें तो म्यूजिक थेरेपी जहां मानसिक समस्याओं को दूर करने में सक्षम है वहीं शास्त्रीय नृत्य शारीरिक समस्याओं को। राष्ट्रीय स्तर के शृंगारमणि पुरस्कार से नवाजी जा चुकी मनीषा की यह बात उन्हीं के एक किस्से से साबित हो जाती है। वह बताती है कि- ''मेरी एक छात्रा को दमा की शिकायत थी। सभी डॉक्टरों ने उसे ज्यादा थकावट लाने वाले काम करने से मना कर दिया था। लेकिन वह फिर भी मुझसे कत्थक सीखने आती थी और यह सीखते-सीखते उसे

इस समस्या से निजात मिल गई।'' इसकी तह में जाएं तो दरअसल दमा के मरीजों को लम्बी सांस लेने में परेशानी होती है लेकिन कत्थक के हर स्टेप को लम्बी सांस लेकर ही पूरा किया जा सकता है। कत्थक सीखते समय दमा के मरीजों को शुरुआत में तो कुछ दिक्कतें आती हैं लेकिन जब उन्हें लम्बी सांस खींचने का अभ्यास हो जाता है तो उनकी सांस फूलने की शिकायत भी दूर हो जाती है।

दमा ही नहीं कत्थक से तीव्र स्मरण शक्ति की समस्या को भी हल किया जा सकता है। बकौल मनीषा यादव 'कत्थक की कुछ खास गिनतियां होती हैं जिन्हें याद रखना बेहद कठिन होता है। इसके लिए हम अपने छात्रों को कुछ विशेष तकनीकों से गिनतियां याद करवाते हैं।' बस यही वे तकनीकें हैं जो कत्थक के स्टेप सीखने के साथ ही बच्चों को उनके किताबी पाठ याद करने में भी मददगार बन जाती हैं। वैसे अगर आपकी हड्डियां कमजोर हैं और इस वजह से आप कत्थक सीखने से हिचक रहे हैं तो इस भ्रम को भी अपने मन से निकाल दीजिए। कत्थक नृत्य में वॉर्म-अप व्यायाम भी करवाए जाते हैं। जिससे हाथ-पांव में लचीलापन आ जाता है। इन व्यायामों से हड्डियां भी मजबूत होती हैं।'

इन सबके अलावा कत्थक नृत्य दिल के मरीजों के लिए भी एक सटीक दवा है। एक दिलचस्प किस्सा सुनाते हुए मनीषा यादव इस बात का पक्ष लेती हैं, 'मेरी डांस क्लास में 50 वर्ष की वृद्ध महिला कत्थक सीखने आती थीं। वह दिल की मरीज थीं। डॉक्टरों के मुताबिक उनके शरीर में रक्त सही गति से नहीं दौड़ता था।' लेकिन कत्थक सीखने के उनके शौक ने उनकी इस समस्या को जड़ से मिटा दिया। आज वह स्वस्थ जीवन बिता रही हैं।

तो वाकई आज की व्यस्त जिंदगी में यदि शास्त्रीय नृत्य कत्थक में स्वस्थ रहने का राज छुपा है, तो भारतीय नृत्य की इस अद्भुत धरोहर से नई पीढ़ी को भी परिचित कराने की जरूरी है जो पाश्चात्य संस्कृति में ही अपना भविष्य खोज रही है।

-टाइप-5, क्वार्टर, हॉर्टिकल्चर रोड
हैडो, पोर्टब्लेयर, अंडमान व
निकोबार द्वीपसमूह-744102

होली पर विशेष

पर्व

हीरालाल छाजेड़ 'जैन'

जीवन में रंग भरने का त्योहार होली

'बुरा न मानो होली है' के उच्चारण के साथ होली के अवसर पर रंगों की बौछार तन के साथ मन को भी भिगो देती है। रंग केवल बाहर ही नहीं हमारे शरीर के भीतर भी अद्‌भुत छटा बिखेरे हुए हैं। सूर्य की रश्मियों में सात रंग माने जाते हैं। लाल, पीला, नारंगी, हरा, नीला, आसमानी और बैंगनी। इन सात रंगों से ही दुनियां व मानव का शरीर रंगीन दुनिया का आनंद लेता है और जीवन में रंग भरने का त्योहार होली की उपयोगिता का अहसास कर सकता है।

रंग केवल हमारे शरीर में ही नहीं प्राणीमात्र के शरीर के लिए उपयोगी है क्योंकि प्राणीमात्र के संपूर्ण शरीर की रचना रंगीन है। मानव के बाहर से दिखने वाले सभी अंगों-अवयवों के रंग भिन्न-भिन्न है और भीतर का संसार भी भिन्न-भिन्न अवयव अलग-अलग रंगों से सुसज्जित है। यथा मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ों, लीवर, प्लीहा, आंते, किडनी, अस्थि, मास, मज्जा, रक्त आदि सभी का पृथक-पृथक रंग है, अगर और ज्यादा सूक्ष्मता में जाएं तो शरीर की खरबों कोशिकाएं भी रंगीन है।

अब यह सत्य भी सामने आ गया है कि शरीर का कोई भी अंग अगर रूग्ण होता है तो उसके रासायनिक द्रव्यों के साथ-साथ रंगों का भी शरीर में असंतुलन हो जाता है। रंग चिकित्सा के विशेषज्ञ इस स्थिति को समझकर रंग चिकित्सा पद्धति के द्वारा इसका समाधान खोजकर रंगों का शरीर में संतुलन पैदा करने का प्रयास करते हैं और रोगमुक्त बनाते हैं।

सुजोक एक्युप्रेशर पद्धति भी शरीर में रंगों की उपस्थिति को मान्यता देती है और रंगों के असंतुलन को मिटाने के लिए शरीर के ऑपरेशन से संबंधित प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर रंगों का उपयोग किया जाता है।

जैन धर्मग्रंथों में एक शब्द आया है 'लेश्या', मतलब रंग। प्रेक्षाध्यान में लेश्या ध्यान का बड़ा महत्व है। शरीर स्थित ग्रंथियों पर रंगों का ध्यान जीवन की दिशा बदलने के साथ-साथ स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोगी माने जाते हैं। ध्यान के साधक श्वास के साथ रंगों का प्रयोग कर क्रोध आवेश पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

भारतवर्ष में अलग-अलग भागों में अपने-अपने ढंग व रीति-रिवाजों के अनुसार होली का त्योहार मनाते हैं। कहीं गुलाल व फूलों की होली तो कहीं लठमार होली का प्रचलन है। मथुरा व बृज की होली प्रसिद्ध है, जहां दूर-दूर से देशी-विदेशी सैलानी इसके आकर्षण से खींचे चले आते हैं। कुछ क्षेत्र हमारे देश में ऐसे भी है जहां होली का रूप गंदा है, गहरे भद्दे रंग, कीचड़ आदि का प्रयोग होता है। अनेक स्थानों पर 'महामूर्ख सम्मेलन' का आयोजन होता है जो जितनी ज्यादा मूर्खता की बात करता है वह उस मूर्ख सम्मेलन में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। देश के नामी गिरामी लोगों को अनेक प्रकार की महामूर्ख सम्मेलन में उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इन उपाधियों का मकसद किसी को चोट पहुंचाने का नहीं होता केवल मस्ती के माहौल में लोग चुटीले व्यंग्य कसकर सकारात्मक सोचने का अहसास कराते हैं और लोग इसे बुरा भी नहीं मानते हैं। इस मौके पर कवियों की काव्य गोष्ठियां भी चलती है जिसका आधार भी हास्य एवं व्यंगात्मक होता है व श्रोताओं को खूब हंसाते व आनंदित करते हैं। भांग, मद्यपान जैसे नशे का भी इस समय धड़ल्ले से प्रयोग होता है जो कि होली के रंग को फीका कर देता है।

होली लोकोत्सव के पीछे क्या मान्यता है? होली फाग या वसंतोत्सव, विकृति पर सुकृति की विजय के उपलक्ष्य में गले मिलने तक चालीस दिन पर्यन्त चलता है। विद्या की देवी सरस्वती लक्ष्मी पूजन से वसंत का स्वागत होता है। हिन्दु धर्मकोश में वसंत पंचमी नवान्नप्राशन, प्रीतिभोज, गाने बजाने के आयोजनों के साथ मनाये जाने का उल्लेख है। धूलिवंदन, गले मिलने, रंग खेलने, आम्र मंजरी, प्राशन, सहभोज, गायन, वादन, नृत्य आदि उत्सव का प्रावधान है। जिस चिता भस्म में भक्त प्रहलाद के चरण पड़े वह धूलि भी वंदनीय हो गई।।

रंगीन आहार भी सेहत के लिए उपयोगी होता है। स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी मानते हैं कि प्राकृतिक रंगों से भरपूर फल और सब्जी में एंटीऑक्सीडेंट विटामिन और मिनरल के फोटो कैमिकल मौजूद होते हैं जो कई बीमारियों से शरीर की रक्षा करते हैं। जीवन में रंग भरने का त्योहार होली वास्तव में हमें रंगों के महत्व का दिशा दर्शन करवाता है। इसकी उपयोगिता को समझें और सकरात्मक सोच को अपनाकर इस त्योहार में आये अवगुणों का परिष्कार करें।

-जय श्री टी. कंपनी, नन्दी शाही
कटक-753001 (उड़ीसा)

होली पर विशेष

पर्व

सुप्रिया

होलिका की नहीं भक्त प्रह्लाद की जय

फागुन की मस्ती में अबीर, गुलाल, रोली और चंदन से धरती रंग जाती है। बसंती सौंदर्य और फागुनी मादकता का यह लोक-पर्व तन-मन में एक सम्मोहन भर देता है। प्रकृति बसंत की छटा और ग्रीष्म ऋतु की आहट इसी पर्व पर दर्शाती है। होली का पर्व कैसे शुरू हुआ, इसके संबंध में विविध कथाएं और मान्यताएं हैं।

सर्वाधिक प्रचलित मान्यता यह है कि होलिका दैत्यराज हिरण्यकशिपु की बहन थी। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद भगवान विष्णु का अनन्य उपासक था। इस नाते सात्विक प्रवृत्तियों के प्रतीक प्रह्लाद हिरण्यकशिपु को घृणा थी। उसने पहले अपने पुत्र को समझाया, डराया और फिर सेवकों द्वारा तरह-तरह के उपायों से मरवाने की चेष्टा की। प्रह्लाद का बाल बांका न होते देख उसने अपनी बहन होलिका से कहा कि तुम अपनी गोद में बिठाकर उसे भस्म कर दो। नारायण जिसकी रक्षा करें उसे कौन हानि पहुंचा सकता है। प्रह्लाद को भस्म कर डालने के प्रयास में होलिका स्वयं जल मरी। आश्चर्य तो यह है कि इस कथा को जानने के बावजूद होलिका दहन के समय लोग 'होली मैया की जय' का उद्घोष करते रहते हैं।

उचित तो यह है कि होलिका दहन के समय 'भक्त प्रह्लाद की जय' बोली जाए। होली की जय बोलने का मतलब है आसुरी या तामसी प्रवृत्तियों का यशोगान।

होली का मूल शब्द है 'होलाका।' काठ्य गृहय सूक्त में 'राका होलाके' सूत्र हैं। इसका अर्थ स्त्रियों के सौभाग्य के लिए किया जाने वाला एक विशेष कर्म बताया गया है। 'राका' शब्द का अर्थ चंद्रमा है। नये अन्न की बालियों को आग में भून कर प्रसाद रूप में उसे खाने को 'होला' की संज्ञा दी गई है। इस कृत्य के बाद बंधु-बांधव, इष्ट मित्र आपस में उल्लास सहित एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं, गले मिलते हैं। नृत्य, संगीत, हास-परिहास आदि का आयोजन किया जाता है। वैदिक संस्कृति में नये अन्न को भूनकर प्रसाद रूप में खाने के कृत्य को 'यज्ञ' कहा गया है।

प्राचीन काल में यह 'होलाका' पर्व मंदिरों के आंगन और राजमहलों में संगीत, नृत्य तथा काव्य गोष्ठियों के रूप में मनाया जाता था। चूंकि बसंत की बहार इसी दौरान दिखायी पड़ती है। अत: हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति रंगीन जल, अबीर और गुलाल के माध्यम से की जाती थी।

कुछ अन्य पौराणिक प्रसंग भी होली के पर्व के साथ जुड़े हुए हैं। 'भविष्यपुराण' में होलिका दहन को ढूण्ढा राक्षसी के उपद्रव की शांति के रूप में मनाये जाने का वर्णन है। एक बार भगवान कृष्ण से युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि हर शहर तथा गांव में फाल्गुन की पूर्णिमा को उत्सव क्यों होता है और बालक हल्ला मचाते हुए होलाका क्यों जलाते हैं?

भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया–एक बार प्रजा ने राजा रघु से शिकायत की कि ढूण्ढा राक्षसी रोज हमें परेशान करती है। राजा ने इसका कारण पता लगाया कि यह राक्षसी मालिन बेटी है। महादेवजी ने इसे वरदान दिया है कि देवता, मानव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि में से कोई भी इसका वध नहीं कर सकेगा। कोई अस्त्र-शस्त्र तथा कोई ऋतु भी इसे हानि नहीं पहुंचा सकेगी, लेकिन पता नहीं, किस मौज में आकर महादेवजी ने यह जरूर जोड़ दिया कि बच्चे तेरा वध कर सकते हैं।

फाल्गुन की पूर्णिमा को शीत ऋतु की समाप्ति और ग्रीष्म ऋतु के संधिकाल में रघु ने नगर के सब बच्चों को एक स्थान पर लकड़ियां जलाने और नाचते, गाते तथा शोर मचाते जलती लकड़ियों की तीन परिक्रमा लगाने का आदेश दिया ताकि ढूण्ढा उनके साथ खेलने आये और बच्चे उसे खेल के दौरान आग में धक्का दे दें। बच्चों के हुड़दंग में राक्षसी आयी और बच्चों ने उसे आग में धक्का देकर जला दिया।

इस प्रसंग या कथा की व्याख्या इस प्रकार है कि मन में बसी कुरुचि और दुर्भावना ही ढूण्ढा राक्षसी है जो मन की पवित्रता को नष्ट करके उपद्रव और उत्पात मचाया करती है। सात्विक तेज रूपी अग्नि में मन की इस ढूण्ढा राक्षसी को जला डालना चाहिए।

होली का पर्व संपूर्ण भारत में मनाया जाता है। यह अलग बात है कि थोड़ा बहुत अंतर हो जाता है।

बंगाल में फाल्गुन पूर्णिमा के अवसर पर कृष्ण की मूर्ति को झूले पर पधराया जाता है। गोविन्द (कृष्ण) की मूर्ति का निर्माण कर वेदिका पर सोलह खम्भे वाले मंडप में उसे प्रतिष्ठित कर पंचामृत से स्नान कराया जाता है। तदुपरांत झूले पर इस मूर्ति को सात बार झुलाते हैं। दक्षिम पश्चिम भारत में होलिका के पांचवें दिन रंग पंचमी का आयोजन किया जाता है और विघ्नहर्ता के रूप में गणेशजी का पूजन होता है। राजस्थान में होली का उत्सव एक पखवाड़ा पहले शुरू हो जाता है। चंग और डफ पर फाग रसिया के स्वर वासंती हवा के पंखों पर सवार हो दूर-दूर तक फैल जाते हैं। हथेलियों पर मेहंदी से चंग और डफ की आकृतियां बनाकर महिलाएं लंबे-लंबे घूंघट काढ़े परस्पर होली खेलती हैं। केसरिया और वासंती रंग की छींटों से रंगी पगड़ियां पहने पुरुष भी इसमें अपने को डूबो देते हैं।

जनजातियां भी इस पर्व के उल्लास से अछूती नहीं हैं। उनकी मान्यतानुसार यह पर्व नयी फसल, महुए और पलाश के फूलों का स्वागत है। बिना किसी भेद-भाव के सब जनजातियां होली का पर्व बड़े उल्लास से मनाती हैं।

विदेशों में भी होली मनायी जाती है, भले ही उसका स्वरूप भारत से भिन्न हो। रोम में देवता की मूर्ति के आगे लोग आग जलाकर उसके चारों ओर नशे में चूर होकर नाचते-गाते और हुल्लड़बाजी करते हैं। इस दिन को मूर्ख के दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। रामवासियों के अनुसार व्यक्ति चाहे भद्र हो, चाहे विद्वान, मूलत: वह होता मानव ही है। इसलिए उसमें मानवोचित दुर्बलताएं होना स्वाभाविक है। इस दिन उन सबको मूर्खतापूर्ण उपद्रव करने की पूरी छूट होती है। रोम की यह एक प्राचीन परम्परा है। इसी के अनुसार भारत में भी होली के अवसर पर अब मूर्ख सम्मेलन आयोजित होने लगे हैं। वैसे पहली अप्रैल को भी मूर्ख दिवस मनाने का प्रचलन 'फूल्स डे' के आधार पर है।

होली पर्व है आनंद का, वैमनस्य भुलाने का और तामसिक प्रवृत्तियों को कुचलकर स्वयं को सात्विकता में रंग डालने का।

–'विभावरी', जी-9, सूर्यपुरम, नंदनपुरा
झांसी-284003 (उ.प्र.)

राजीव मिश्र

हम क्यों भटक रहे हैं?

श्री विवेकानंद के अनुसार ''यदि भारतीय समाज खत्म हो गया तो संसार में धर्म से शांति एवं अहिंसा की बात कहने वाला कोई समाज एवं देश नहीं बचेगा तथा विश्व से सभी अच्छाइयों का खात्मा हो जाएगा।'' इसी तरह महात्मा गांधी का मानना था- ''मेरे लिए भारत दुनिया का सबसे प्रिय देश है। इसलिए नहीं क्योंकि वह मेरा देश है बल्कि इसलिए क्योंकि इस देश में मैंने महानतम गुणों को पाया है।''

भारतीय जीवन दर्शन में कार्यनिष्ठा की स्थापना सामाजिक समरसता को दृष्टि में रखकर की गई है। यदि मनुष्य कार्य में लीन नहीं होता तो वह अपना, अपने परिवार का हित नहीं कर सकता। परन्तु व्यक्ति के कार्य कैसे हो, शुभ कार्य या अशुभ कार्य। इस पर भारतीय चिंतनधारा में अत्यंत गंभीरता एवं विस्तार से विचार हुआ है तथ शुभ कार्यों को ही व्यक्ति के लिए करणीय तथा निकृष्ट कार्यों को त्याज्य माना गया है।

रामायण ने मानव धर्म के मूल आधार पारिवारिक धर्म की रक्षा की है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई इत्यादि के संबंधों का तथा राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्यों का आदर्श स्वरूप अत्यंत प्रभाविकता से चित्रित किया है, इससे हजार वर्ष की दासता में भी भारतीय समाज की नैतिकता एवं धर्म की रक्षा रामायण ने की है। परिणाम स्वरूप इतिहास में भारतीयों के पारिवारिक आपसी संबंध बहुत अच्छे रहे हैं जो आज तक बने हुए हैं।

श्रीमद् भगवद्गीता कहती है 'परित्राणाय साधुनाम विनाशाय च दुष्कृताम्' अर्थात् सज्जनों की रक्षा के लिए दुष्टों का विनाश होना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दू समाज साधु और दुष्ट में भेद नहीं कर सका। गरीब जनता दो वक्त की रोटी कमाने में जुट गई है। संपन्न भारतीय समाज आजादी के बाद राजनैतिक नेताओं एवं सरकारी अफसरों के साथ मिलकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लग गया।

मनुष्य के भौतिक जीवन, भौतिक शरीर तथा भौतिक जगत संबंधी जितनी भी योजनाएं होती हैं, वे अहंकार से प्रेरित होती हैं। मनुष्य को संसार संबंधी अहंकार से प्रेरित योजनाओं के साथ-साथ परमात्मा संबंधी निरहंकार होने की भी योजनाएं बनानी चाहिए। जब तक मनुष्य परमात्मा संबंधी योजनाएं नहीं बनाता वह मायिक बुद्धि तथा मायिक मन का शिकार बना रहता है और जीवन के आनंद से वंचित रह जाता है क्योंकि अहंकार शून्य जीवन ही प्रेमानन्द का जीवन है। जब तक मनुष्य धर्म से प्रेरित होकर जीवन जीना नहीं सीखता भौतिक जगत में चाहे जितना भी सफल हो जाए, कृष्णानंद, दिव्यानंद नहीं पा सकता।

मनुष्य को शरीर आत्मा की संभाल के लिए मिला है और शरीर की संभाल के लिए भगवान ने सृष्टि रचाई है। इसलिए संसार का होना भगवान का ही प्रसाद है। संसार तो मनुष्य के शरीर का हितैषी है। मनुष्य अपनी ही मायिक बुद्धि के कारण इसका ठीक उपयोग नहीं कर पा रहा है क्योंकि उसका पूरा जीवन संसार के विषयों की योजना बनाने, उन विषयों की प्राप्ति के लिए अंधाधुंध भागते रहने में भी लगा रहता है। संसार के आनंद के लिए परमात्मा संबंधी कोई योजना उससे बनती ही नहीं। वह (परमात्मा) कैसे मिलेंगे, कब मिलेंगे, कौन मिलने का मार्ग बतायेगा, मिलने के क्या-क्या उचित उपाय हैं इस ओर मनुष्य की दृष्टि जाती ही नहीं।

आज पाश्चात संस्कृति का भोगवाद मानवचरित्र को नष्ट कर रहा है। गीता कहती है कि मानव समाज और ज्ञानी पुरुषों की निरंतर बैरी कामवासना है। ये महापाप और महाविनाश करने वाला नर्क का द्वार है। इससे बचने के लिए गीता का आत्मसंयम और इन्द्रिय निग्रह एकमात्र उपाय है, जो विश्व को वर्तमान संकट से उबार सकता है। गीता ने भक्तियोग, ज्ञान योग और कर्मयोग के द्वारा भारत के सभी महापुरुषों विवेकानंद, तिलक, गांधी इत्यादि को प्रभावित किया है।

विश्व के कई प्रसिद्ध एवं निष्पक्ष विचारकों एवं चिंतकों की राय में भारतीय संस्कृति ही विश्व की सभी समस्याओं का समाधान निकालने में सक्षम है क्योंकि उसके चिंतन की दिशा वैदिक निर्देश-विश्व की सभी दिशाओं से उदात्त विचार हमारी ओर आए-से निर्देशित है। इसी वैश्विक विचारदर्शन ने भारत को कई क्षेत्रों में विश्व नेतृत्व प्रदान किया है। भारत में भारतीय संस्कृति को ही साम्प्रदायिक बताकर उसे स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में पढ़ाया नहीं जा रहा है, जिसका दुष्परिणाम यह निकला है कि नई पीढ़ी भारत की प्राचीन परम्पराओं एवं नैतिक मूल्यों से पूरी तरह भटक गयी है। आज राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में जो भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता देखने को मिलती है, वह इसी का परिणाम है। इससे उबरने का एकमात्र रास्ता है वेद, गीता और रामायण के पारम्परिक मूल्यों की शिक्षा का प्रसार करना।

-245-बी, बाघम्बरी हाउसिंग स्कीम
इलाहाबाद-211006 (उ.प्र.)

चिंतन

कविता भाटिया

मन की देहरी

आज की उत्तर आधुनिक संस्कृति हमें व्यक्ति रूप में अकेले सुखी और संपन्न बनने की ओर धकेलती है। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' के दुविधाग्रस्त नायक की तरह हम वास्तविकता को समझ पाने में असमर्थ हैं और मध्ययुग के आदर्शों और मूल्यों को हम अपनी आवश्यकता या सुविधानुसार बदल कर अपने 'मॉर्डन' होने का सबूत दे रहे हैं।

अपने नौ साल के बेटे के साथ एक रेस्तरां में छोले-भटूरे खरीदते एक मजदूर को मैंने सड़क पर उंकड़ू बैठे देखा जो निराला के 'भिक्षुक' के 'पेट-पीठ दोनों मिल कर हैं एक' को सार्थक कर रहा था। उसके गले से अजीब-सी आवाज निकल रही थी और हर आने-जाने वाला उसे एक नजर देख मुंह फेर कर निकल जाता। मेरा बेटा आश्चर्य से लगातार उसे देखे जा रहा था। अचानक उसे उल्टी होने लगी। इधर गरमागरम भटूरे तले जा रहे थे और लोग चटखारे लेकर खाते हुए खुद में मग्न थे। तभी उस मजदूर के एक साथी ने एक रिक्शा वाले को आवाज लगा कर शायद डॉक्टर के पास ले जाने को कहा, पर वह मोलभाव करने लगा। मेरे मन का एक कोना भीग गया। फिर दूसरे ही पल मैं समाज की उसी भीड़ का हिस्सा बन गई और वहां से निकल गई। लेकिन उस मजदूर की उदास आंखें कई दिनों तक मेरा पीछा करती रहीं और मैं खुद को कोसती रही कि काश, आगे बढ़ कर मैंने उनकी मदद कर दी होती।

'आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसा होना।' इस या इस जैसी अनेक घटनाओं को हम रोज अनदेखा कर आगे निकल जाते हैं, क्योंकि 'हम जल्दी में हैं।' आज हममें से ज्यादातर के व्यक्तित्व का बस एक ही आयाम शेष रह गया है– भौतिक इच्छाओं की संतुष्टि। दरअसल, मानव मूल्यों के प्रति उपेक्षा भाव बाजारवाद की देन है। जहां विलासिताएं जीवन की अनिवार्यताओं में बदल रही हों, वहां ऐसी घटनाएं उस सभ्य-शिष्ट वर्ग की शालीनता और उच्चता के आवरण को भेद उसकी निर्ममता और नृशंसता को सामने लाती है जो ऊपरी चमक-दमक से परिपूर्ण खुद को उच्च दिखाने का ढोंग रचता है।

आज की उत्तर आधुनिक संस्कृति हमें व्यक्ति रूप में अकेले सुखी और संपन्न बनने की ओर धकेलती है। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' के दुविधाग्रस्त नायक की तरह हम वास्तविकता को समझ पाने में असमर्थ हैं और मध्ययुग के आदर्शों और मूल्यों को हम अपनी आवश्यकता या सुविधानुसार बदल कर अपने 'मॉर्डन' होने का सबूत दे रहे हैं। पहले पड़ोस में किसी के सिसकने या कराहने की आवाजें हमारा दिल दहला देती थीं और हमारे पांव झट उसकी मदद को दौड़े जाते थे, मगर आज के 'विश्वग्राम' में सुबह चाय की चुस्कियों और रात बटर-चिकन के चटखारे लेते हम चुपचाप हत्या, खून और आंसू देखते रहते हैं। मीडिया पीड़ा को 'रस' में तब्दील कर रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीकी क्रांति ने संवेदनहीनता का बिरवा हमारे मन में बो दिया है। ऐसी विषम परिस्थितियों में कई बार असुरक्षा और हमारा भय भी शामिल होता है।

कुछ समय पहले मेरे पिताजी भरी बस में यात्रा कर रहे थे। सीट न मिल पाने की वजह से वे खड़े थे। अचानक उनकी नजर उस जेबकतरे पर पड़ी जो किसी सज्जन की जेब साफ कर रहा था। पिताजी ने उधर नजर क्या घुमाई जेबकतरे ने दूर से ही उन्हें चाकू दिखा दिया। तीन बेटियों के असहाय बूढ़े पिता ने अनजाने भयावह भविष्य की कल्पना कर चुप रहे और जेबकतरों की टोली अपना काम सफलता से करके बस में उतर गई। लेकिन पिताजी की मनोदशा कई महीनों तक अजीब-सी बनी रही। शायद इसलिए कि हम पहाड़, शिखर, दर्रे सब लांघ जाते हैं, पर अपने मन की देहरी नहीं लांघ पाते। जब तक यह स्थिति बनी रहेगी, सामाजिक स्थितियों में भी सुधार की गुंजाइश बराबर बनी रहेगी। लेकिन 'वो सुबह कभी तो आयेगी' का इंतजार करते-करते कहीं बहुत देन न हो जाए।

ऐसे में कवि अरुण कमल की काव्य पंक्तियां–'पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष/आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है...' पढ़ते-पढ़ते महसूस हुआ कि ये काव्य पंक्तियां हमारी आज की बदलती मानसिकता की सही तस्वीर सामने लाती हैं। आज हर शख्स जिंदगी की तेज रफ्तार में सबसे आगे निकल जाना चाहता है, चाहे इसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। जल्दबाजी में पैर बढ़ाने की कोशिश में वह अपनी मनुष्यता, संवेदना, भावुकता, सहयोग और भाईचारा सब कुछ खोता जा रहा है।

एक ओर राष्ट्रमंडल खेलों जैसे भव्य आयोजनों की मार्फत भारत विश्वशक्ति बन कर उभर रहा है तो दूसरी ओर यहां समाज के निम्न आयवर्गीय और कमजोर तबकों की हालत और ज्यादा खराब होती जा रही है। खाने-पीने से लेकर दवा और रोजमर्रा की दूसरी चीजें उनकी पहुंच से बाहर होती जा रही हैं। किसी भी फुटपाथ, सड़क के चौराहे और फ्लाइओवरों के नीचे शरण लिए लोगों को पशुओं जैसी जिंदगी जीते देख शर्मिंदगी होती है। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से मन में कौंधता है कि कहां है विकास! क्या यही है विकास? लालकिले की प्राचीर से झंडा फहराते प्रधानमंत्री हर वर्ष किस विकास के चढ़ते ग्राफ की बात करते हैं? ■

कर्तृत्व

मुनि बुद्धमल्ल

कलम कह रही थी कि संसार की सब पुस्तकें मेरे द्वारा ही लिखी गई है। मैं न होऊं तो साहित्य का भंडार सदा खाली ही पड़ा रहे और वाग्देवी के चरणों में पूजा के फूल कभी चढ़ ही न सकें।

स्याही ने कहा–'तुम मेरे बिना क्या लिख सकती हो? किसी भी पुस्तक को खोल कर देखो, प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पंक्ति मेरे ही जीवन रस से सिक्त मिलेगी।'

हाथ ने उन दोनों की बात का प्रतिवाद करते हुए कहा–'यह सब सरासर मिथ्या है। इन सब पुस्तकों को लिखने वाला तो मैं हूं। श्रम मेरा है। तुम दोनों तो मरे कार्य में साधन मात्र बनी हो।'

मस्तिष्क ने तीनों की बातें सुनीं और एक गोपनीयता के साथ हंस पड़ा।

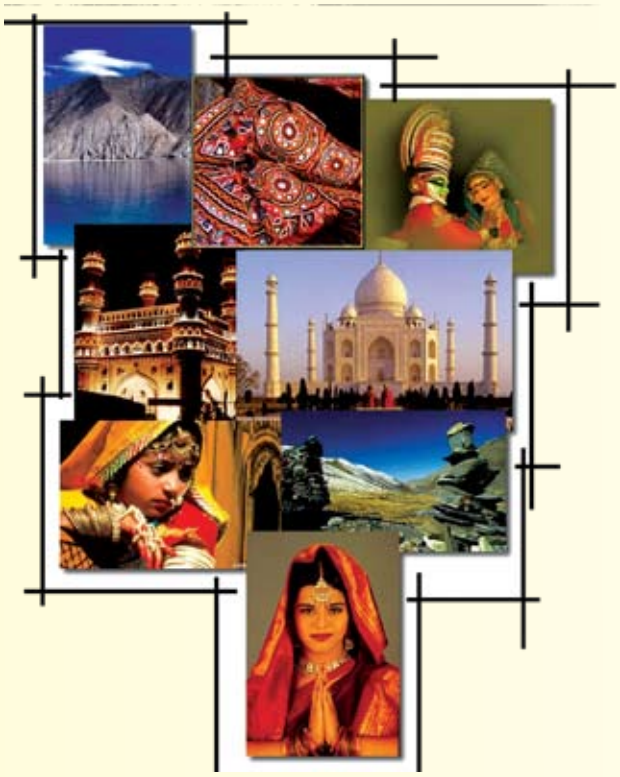

आत्ममंथन

डॉ. सुनील कुमार अग्रवाल

हम अपनी पहचान न भूलें

पर्यावरण शब्द अब लोक मानस के लिए नया नहीं है। परम्पराओं के प्रकल्प में ही लोकजीवन चला आ रहा है। परम्पराएं सदा वर्तमान की गोद में पलती हैं। (यह बात अलग है कि वर्तमान प्रतिपल भूत में विलीन होता है।) परम्पराएं आधुनिकता के कलेवर में और भी अधिक परिष्कृत होती है। किन्तु यदि आधुनिकता के ताने बाने से संवेदना कहीं छीजकर या छनकर दूर हो जाती है तो परम्पराएं टूट जाती हैं। यही टूटन तो पर्यावरण और परिवेश-परिकर में घुटन का कारण बनती है।

आधुनिक होना बुरा नहीं है। सभ्यता की सीढ़ियां चढ़ना भी बुरा नहीं है क्योंकि इससे आत्मानुशासन और आत्मैक्यता बढ़ती है। आधुनिकता तो हमारे जीवन दर्शन को नित नया आयाम देती है, नई दृष्टि देती है और मोहब्बत का पैगाम देती है। रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार भी विश्व को आसक्त भाव से न निहार कर निर्विकार तद्भव भाव से देखना आधुनिकता है।

मैं मानता हूं कि आधुनिकता आनंदसम्मोहिता एवं आनंदमत्ता होती है। आधारभूत, आधारशक्ति (शक्तिस्वरूपा प्रकृति माया) पर ही आधुनिकता का आनुषंगिक महल खड़ा होता है जहां प्रेम रहता है। व्यष्टि को समष्टि और सृष्टि के प्रति प्रेमातुर होना ही चाहिए। हां प्रेम का प्रयोजन सिद्ध भी होना चाहिए क्योंकि प्रेम परस्पर (रेसीप्रोकेट) होता है। हमारा हर क्रियाकलाप सृष्टि और पर्यावरण के प्रति प्रयोगधर्मी होना चाहिए। हमें प्रासंगिकता के साथ कदमताल करना चाहिए। हमें परम्परा के पाथेय को समझना चाहिए और सदैव ही परिवेशगत रहना चाहिए।

पर्यावरण का उद्बोध यही है कि हम परम्परा के पाथेय पर नई दृष्टि से सर्जनात्मकता के साथ चलें। सृजन की प्रेरणा प्रकृति से मिलती है। परम्परा ही प्रगति का प्रस्तावक है। नवीन के प्रति आकर्षण सहज ही होता है किन्तु पुराने को भी तो कोई समझदार यकायक नहीं खोता है। परम्पराएं अनेक परिवर्तनों के बीच से गुजर कर पल्लवित, पुष्पित तथा सुवासित होती है। इस प्रक्रिया में वक्त लगता है। जो परिवर्तन ग्राह्य नहीं होते हैं वह रूढ़ि कहलाते हैं। अतः हमें परम्परा और रूढ़ि में भेददृष्टि रखनी होगी। हर परम्परा बारंबार प्रासंगिकता के निकष पर कसनी होगी। प्रकृति एवं पर्यावरण पोषिता मिथकीय परम्पराएं भी सार्थक सिद्ध रही हैं। परम्परा पोषी आधुनिकता ही हमारे पर्यावरण का संबल है।

परम्पराओं तथा समकालीन परिस्थितियां पर सम्यक् चिंतन और विवेचन जरूरी है। देशकाल परिस्थितियों के अनुसार संवेदन तथा मूल्यबोध विकसित होता है। मनीषियों के अनुसार आधुनिकता स्वयं भी मूल्यों की प्रस्तोता एवं जननी है। जो कि मूल्यों को प्रतिवर्ती दृष्टि भी देती है। यह मूल्य पारम्परिक होते हैं। जिनमें समकालिक प्रवृत्तियां पनपती हैं। यह प्रवृत्तियां पर्यावरण की पोषक होनी चाहिए न कि उसकी शोषक। यह प्रवृत्तियां पर्यावरण की शोधक होनी चाहिए न कि प्रदूषक।

हमें परम्परा के निर्वहन के नाम पर संकीर्ण रूढ़िवाद तथा आधुनिकता के नाम पर उद्दंड-उच्छृंखलता से सावधान रहना होगा क्योंकि दोनों ही प्रवृत्तियां पर्यावरण के लिए घातक है। हमें लोकहितकारी लोकायित धर्म निभाना चाहिए। दूसरों के काम आना, सुख-दुःख में साथ निभाना, हाथ बंटाना आदि कर्म, लोकधर्म है। सामुहिकता ही प्रकृति एवं पर्यावरण का मूल तत्व है। हमें परम्पराओं का सम्यक मूल्यांकन भी करते रहना चाहिए तथा स्वस्थ परम्पराओं को जीवंत रखना चाहिए।

हमारी सांस्कृतिक परम्पराएं आरण्यक रहीं, जिनमें प्रेमास्पद सौन्दर्यता तथा नतृत्व सदैव रहा। परम्पराओं के मानवीय पक्ष की प्रतिष्ठा रही। अब आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के पथ पर मानवीय पक्ष छीज रहा है, क्यों छीज रहा है? यही यक्ष प्रश्न है जिसके उत्तर की तलाश में हैं हम। परम्पराएं तो सरस धारा बन कर हमारी तृष्णा को संतृप्त करती रही है वैसे ही जैसे वन-प्रांतर को सरस सलिताएं सभासक्त रखती हैं। हमें सरसता को शुष्क एवं रूक्ष नहीं होने देना है। मधुरता के साथ सतरंगी इंद्रधनुषी भाव संजोना है।

हमारी चिंता परम्पराओं के उस आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक रंग में रंगने से नहीं है जो समय की मांग के अनुरूप है। कैनवास में नये-नये शेड्स भी अच्छे लगते हैं किन्तु हमारी चिंता उन वीभत्सताओं को लेकर अवश्य है जो कुतर्कों के सहारे हरित विश्वास को धकिया रही हैं और प्रकृति की नैसर्गिकता को तोड़ रही हैं। प्रकृति को छेड़ रही है। उन कुत्साओं से है जो परिवेश को विषाक्त कर रही हैं। उस अवमूल्यन से है जो अच्छे-बुरे का भेद भूल रहा है। क्योंकि केन्द्र में धन ऐश्वर्य है। जिसके इर्द-गिर्द उत्तर आधुनिकता के प्रेत नृत्य कर रहे हैं और नई-नई परिभाषाओं

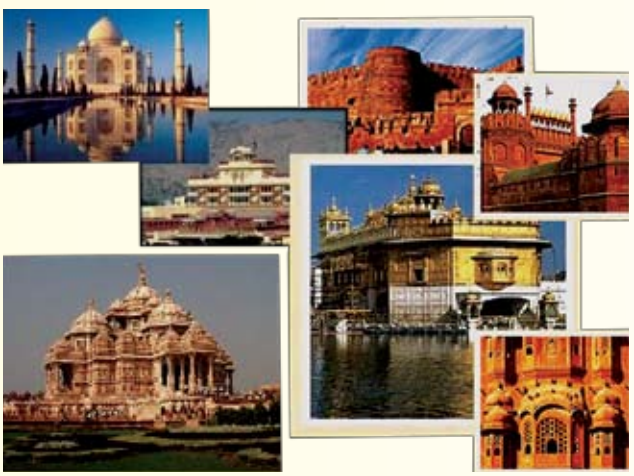

हमारी चिंता परम्पराओं के उस आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक रंग में रंगने से नहीं है जो समय की मांग के अनुरूप है। कैनवास में नये–नये शेड्स भी अच्छे लगते हैं किन्तु हमारी चिंता उन वीभत्सताओं को लेकर अवश्य है जो कुतर्कों के सहारे हरित विश्वास को धकिया रही हैं और प्रकृति की नैसर्गिकता को तोड़ रही हैं।

को गढ़ रहे हैं। हमें उनके विनाशक नृत्य को रोकना ही होगा।

परम्परा को वर्जित मानते हुए विकास विरोधी समझना बड़ी भूल है। परम्पराएं तो प्रगति की प्रस्तावक, प्रशस्थक तथा प्रशंसक है। हमारी परम्पराएं पर्यावरण पर दृष्टि तो रखती ही हैं साथ ही उसे पुष्ट भी करती है। प्रकृति में कुछ भी स्थायी नहीं है। प्रकृति में प्रगति है, परिवर्तन है। परिवर्तन परम्परा को सदैव नई अर्थवत्ता के साथ आगे बढ़ाता है। वरणीय आगे बढ़ जाता है। अस्वीकार पीछे छूट जाता है। चिंता यह है कि कहीं कभी भी हम अपनी अहंमन्यता में वरणीय का तिरस्कार न कर दें। परम्परा को अस्वीकार न कर दें। हमारी प्रगति पारम्परिक विचारों से ही अनुप्राणित होती है।

परम्परा तो सुदीर्घकालिक होती है। गत्यात्मकता जिसका नैसर्गिक गुण होता है जिसमें वरणेय गत्यात्मकता नहीं होती वह रूढ़ि कहलाती है। हमें रूढ़िगत नहीं वरन प्रगतिशील, समुन्नत सुविचारित पर्यावरणीय दृष्टि रखनी चाहिए। परम्परा प्रवाह है तो आधुनिकता उसकी तरणता और वही उसकी तारणहार भी है। आदिम से आधुनिक होने की अपनी परम्परा में प्रकृति और संस्कृति का समादर करना ही होगा। आधुनिकता में हम कभी भी कहीं भी अपनी मौलिकता न छोड़ें। तथ्यों को स्वार्थान्धता में न तोड़े–मरोड़े। हम अपनी प्रकृति पर आघात न करें। प्रकृति ने हमें जीवन दिया है हम प्रकृति के लिए मरे।

यहां मैं बात कर रहा हूं, अपने देश के बिगड़ते हुए पर्यावरण की। देश में सांस्कृतिक जड़े गहराई तक जमी हैं इसके बावजूद हम गन्दगी ढो रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण ये है कि हम अनात्म हो रहे हैं। हमारी आत्मा मर रही है। अपनी जड़ों से कट रहे हैं। हम आयातित को अपना रहे हैं, अपनी अस्मिता को भूलते जा रहे हैं। हम आततायी और आत्मीय का भेद भी भूल गए हैं। आदिम से आधुनिक हुए, अब उत्तर आधुनिकता की ओर बढ़ रहे हैं यह कहूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि स्वयं को स्वयं से छल रहे हैं। उत्तर आधुनिक विद्रूपता की सलीब को कंधों पर उठाये मर रहा है पर्यावरण। चारों ओर हो रहा है सुचिता का ही हरण। हमारी सोच बड़ी ही सोचनीय हो गई है। अब तो उच्चस्तरीय जीवन से उच्चस्तरीय सोच विचार की भी गारंटी नहीं है क्योंकि सोच विचार पूरी तरह स्वार्थ से जुड़ गया है।

हमारे पास अकूत प्राकृतिक सम्पदा है किन्तु इसे मुक्त हस्त से लूटने की भी स्वतंत्रता है तभी तो लुटे–पिटे पर्यावरण के घेरे में है हम। हमारे अंदर उलझन, अनिर्णय एवं असंतोष समाया रहता है। यूं तो हम भाव विभोर होकर गाते–बजाते हैं– ''गो धन गज धन बाजिधन और रतन धन खान, जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान।'' किन्तु संतोष होता कहां है। आधी मिले तो आदमी पूरी के लिए दौड़ता है। वह अपनी तृष्णा कभी नहीं छोड़ता है। हम नैतिकता से दूर हैं, क्रूर हैं। हम स्वार्थी हैं तभी तो हमें खुशी नहीं मिलती है। एक खालीपन और रिक्तता घेरे रहती है हमें हर दम। भीड़ में भी आदमी अकेला है। यही तो उत्तर आधुनिकता का खेला है।

सच कहूं तो संस्कार एवं संस्कृति के स्तर पर उत्तर आधुनिकता विकास आपदा से जूझ रहे हैं हमलोग। आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद ने हमें हमारी जड़ों से काटकर वह आकाश कुसुम दिखला दिया है जो हमारी निगाह को तप्त सूर्य के नजदीक ले आया है। झुलसते हुए भी हम उसे देखना ही नहीं, पकड़ना चाह रहे हैं। अपने ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की जद्दोजहद में हम अपनी धरती आकाश और रक्षा आवरण को ही नष्ट करते आ रहे हैं, छटपटा रहे हैं। ऐसे में आत्मविश्वास की जरूरत है। इस तरह भला अमृत्यं कब तक रहेंगे हम?

अत: अब वक्त आ गया है कि हम अपनी पोषिता को पहचानें, अपनी प्रकृति की मानें। अपनी जड़ों को पहचानें। अपने बीज को पकड़ें, अपने लक्ष्य को देखें। अपने संभावनाशील पंखों को खोलें, संवेदी बने, उड़ान भरें, गलत से नहीं डरें। नैतिक एवं आध्यात्मिक हो जाएं, अपने विश्वास को बनाएं। सर्वहारा हो जाएं और अपनी संस्कृति का हर द्वार खुला पाएं। मिथकीय परम्पराएं भी कहीं न कहीं यथार्थ से जुड़ी होती है उस यथार्थ की तह तक जाएं।

यह निर्विवाद सत्य है कि समय की शिला पर परम्परा नित नये प्रतिमान गढ़ती है और आधुनिकता कालान्तर में परम्परा का रूप धरती है। फिर नई अधुनातन अवस्था आती है। परिवर्तन तो जीवन की थाती है। हम कहीं भी और कभी भी अंधानुकरण न करें किन्तु सही का वरण अवश्य करें। हमारी पर्वोत्सव परम्पराएं एवं हमारी सभ्यता, संस्कृति का अंग रही पेड़–पौधों एवं जीव–जंतुओं में देवाधिष्ठान परिकल्पनाएं पर्यावरण की रक्षक है। हमारी ग्राम्या कृषिप्रधान संस्कृति सदैव वरणीय है। हम गोपद के पूजक है। आधुनिकता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम वैदिक संस्कृति को भूल कर पाश्चात्य विकृतियों को पूजने लगे। अंत में यही कहूंगा कि हम अपनी पहचान न भूलें। भवभूमि भारत भारती का यशगान न भूलें।

–स्वप्निल सदन, रानीबाग, सुभाष रोड
चंदौसी, मुरादाबाद–202412 (उ.प्र.)

अपना–पराया

श्यामसुंदर गर्ग

ईसा मसीह अपने भक्तों के साथ सत्संग एवं परामर्श में व्यस्त थे। ईसा के परिवारजन उनसे मिलने आए। और लोगों ने कहा–''प्रभु! क्या आप अपने परिवार वालों की ओर ध्यान नहीं देंगे ?''

ईसा मसीह ने कहा–''संसार में मेरा अपना पराया कोई भी नहीं है। मैं तो समस्त संसार को ही अपना परिवार मानता हूं। इसी बात को ध्यान में रख कर सारे कार्य करता हूं। तुम भी यही आदर्श अपनाओ। अपने पराये का भेद मिट जाएगा।''

–बी–320, सुभाष नगर, भीलवाड़ा–311001

आचार

जयशंकर मिश्र 'सव्यसाची'

नारी का असली सौन्दर्य शरीर नहीं, शील है

यत्र नार्यस्य पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: -जहां नारियों का सम्मान होता है वहां सुख, समृद्धि का राज्य होता है। यह वैदिक काल की विशिष्ट रूप से एक भारतीय परम्परा है जो विश्व की किसी अन्य सभ्यता में नहीं मिलती है।

आधुनिक विश्व समाज जब किसी महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है तब उस मुद्दे पर एक दिवस निर्दिष्ट कर समाज का ध्यान उस ओर आकर्षित किया जाता है। इसी कड़ी में 8 मार्च को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के नाम भी यह दिवस निश्चित किया गया है।

इस दिवस को समाज में महिलाओं की दशा और दिशा पर आत्मचिन्तन करने का अवसर मिलता है। पश्चिम की नकल में संभ्रान्त शिक्षित वर्ग की महिलओं के लिए भारतीय समाज में पुरुषों से समान अवसर प्राप्त करने के लिए आंदोलन करना भी एक मुद्दा बन जाता है।

स्वामी विवेकानंद से 1890 के अमेरिका के प्रवास में एक अमेरिकन ने पूछा कि-'क्या भारत में महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा दिया जाता है। इस पर स्वामी का उत्तर था-'नहीं।' इस उत्तर को सुनकर सब लोग आश्चर्यचकित रह गये। तब स्वामीजी ने कहा कि नहीं, भारत में महिलाओं को पुरुषों से बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता, महिलाओं को तो भारत में पुरुषों से उच्च स्थान दिया जाता है।

सम्प्रति महिलाओं पर अत्याचार, कन्या भ्रूण हत्या, आर्थिक लाभ के लिए महिलाओं के शरीर का अभद्र प्रदर्शन एक साधारण बात हो गयी है। वेदों के अनुसार सामाजिक मूल्यों के विघटन का कारण निर्माण के कार्य में महिलाओं की भूमिका को न समझना महिलाओं की उपेक्षा है।

मातृशक्ति की भूमिका संतान के मानसिक और शारीरिक निर्माण में गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है। संतान में बाल्यावस्था से सामाजिक मूल्यों की अवधारणा, प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति चेतना, मातृशक्ति की ही समाज को देन होती है। प्रकृति ने जन्म से ही स्त्री जाति को अपने इस सामाजिक दायित्व को निभाने के लिए सक्षम बनाया है।

वेद के अनुसार तप द्वारा अर्जित बलवानों की उग्रता, जैसे रामायण काल में उग्र बलशाली रावण जैसे राक्षसों का अहंकार भरा आचरण या महाभारत में दुर्योधन का आचरण या फिर आधुनिक काल के बाहुबली अपने पौरुष के दम्भ में कन्या भ्रूण हत्या, महिलाओं का अपहरण और बलात्कार समाज के अवनति के कारण बनते जा रहे हैं।

जहां पर स्त्रियों का अपमान होता है, वहां ईश्वर भी नाराज हो जाते हैं और उन्हें अवतार लेना पड़ता है। यह भूमि हमारी माता है। माता और भूमि का अपमान असहनीय है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, तपस्या और सबसे महान विजय है।

श्रद्धेय स्वामी रामदेवजी महाराज का कथन है-'मां नौ महीने बच्चे को कोख में प्रेम, करूणा, ममता और वात्सल्य से रखती है। इसके बाद नौ माह गोद में और जब तक प्राणान्त नहीं हो जाता तब तक वह अपने बच्चे को हृदय में रखती है। माता-पिता के चरणों में चारो धाम हैं। माता-पिता इस धरती के भगवान हैं। आओ! फिर से 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव.....' की संस्कृति अपनाएं।

महाराजश्री का मानना है कि-'नारी' का असली सौन्दर्य शरीर नहीं शील है। नारी बाजार की बिकाऊ उत्पाद नहीं है। वह सीता, सावित्री, कौशल्या, जगदम्बा, दुर्गा, तारावती, गार्गी, मदालसा, अपाला, महालक्ष्मी, मीरा और लक्ष्मीबाई है। नारी मां की ममता, पत्नी की पवित्रता एवं बेटी का प्यार है। नारी को बाजार का बिकाऊ सामान मत बनाओं एवं नारी की तस्वीर शील का मजाक मत उड़ाओ। यहां मां का अपमान है। राष्ट्र की जागरूक मां, बहन एवं बेटियों के चरित्र पर आज इलेक्ट्रानिक्स मीडिया में जिस तरह से प्रश्न चिन्ह लगाये जा रहे हैं, उनका पूरी ताकत से विरोध करना चाहिए। बाजार के क्रूर लोगों को अहसास दिलाना चाहिए कि भारत की नारी चरित्रहीन नहीं, वह पवित्रता की पराकाष्ठा है। भारत की 50 करोड़ से अधिक मां, बहन, बेटियों का सम्मान, मेरा सम्मान है एवं उनका अपमान मेरा अपमान है। नारी के सम्मान की रक्षा करना मेरा स्वधर्म है क्योंकि वह मेरी मां, बहन और बेटी है। किसी कवि ने कहा है-'नारी से नर होता है, नारी नर की खान.....', एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।

इस समय भारतीय परिवेश में दहेज हत्या, कन्या भ्रूण हत्या जोरों पर है इसलिए नारियों की संख्या कम होती जा रही है परन्तु यह विचार करना आवश्यक है कि जब समाज में नारियों की संख्या कम हो जायेगी तब क्या होगा? समय रहते हमने विचार नहीं किया तो काफी देर हो जायेगी।

-सह संपादक 'योग संदेश' पत्रिका,
पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार

तुच्छ सूई

राजमल डांगी

एक बार सूई और तलवार की खटपट हो गई। तलवार की तीखी नोक गरजीं। जरा सी सूई और इतने नखरे। सूई ने शांति धारण कर ली। फिर मुस्करा कर बोली, बहिन तलवार तुम्हारी ताकत महान है। तुम्हारी नौक के बल पर नेपालियन सम्राट बना था, तुम्हारी नौक से ही राजमुकुट उठाकर उसने सिर पर धारण किया था लेकिन मैं तुच्छ सूई होते हुए भी तुझसे ज्यादा काम की हूं। फटे को सिल देती हूं। पांव में चूभे कांटे को निकाल-बाहर कर देती हूं। बलवान तलवार तुम्हारी महानता तो केवल राजा-महाराजाओं के बीच ही है। मेरा स्थान तो गरीब की झोंपड़ी में भी है। चुपचाप म्यान में घुसते हुए तलवार बोली, जरा सी सूई हो, मगर तन में चुभकर भी मन-मस्तिष्क को राहत देती हो। तुम धन्य हो।

-ज्ञान पिपासा, 1ए/16 रामटेकरी
मन्दसौर-458001 (म.प्र.)

कुंजी

डॉ. कुलभूषणलाल मखीजा

सफलता की सीढ़ी है एकाग्रता

जीवन के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में एकाग्रता ने अपना प्रभुत्व बनाए रखा है। खिलाड़ी चाहे कितना ही सशक्त एवं मेहनती हो, यदि उसमें एकाग्रता का अभाव है तो 'गेंद' का लक्ष्य छूट जाएगा। गायक, वादक, चित्रकार, राजनेता या व्यापारी सभी अपने कला–कर्म क्षेत्र में एकाकार हो जाएं तभी सफलता एवं प्रशंसा प्राप्त होती है।

जब किसी परीक्षा अथवा प्रतियोगिता के परिणाम प्रकाशित होते हैं तब सामान्यतया असफल होने वाले परीक्षार्थी ऐसा कथन करते हैं कि ''हमने उत्तर ठीक–ठीक लिख दिये थे।'' इस प्रकार के कथनों को यदि सही मान लिया जाए तो मेरी समझ से इसके पीछे महत्वपूर्ण तथ्य यह रहता है कि परीक्षार्थी में 'एकाग्रता' का अभाव होता है। क्योंकि जो भी परीक्षार्थी लक्ष्य के प्रति सतर्क रहकर एकाग्रता से दत्तचित्त होकर अध्ययन करते हैं और पूछे गये प्रश्नपत्रों के उत्तर भी वांछित अनुसार देते हैं, वही सफल भी होते हैं। अधिक समय पढ़ना–परिश्रम करना किन्तु एकाग्रचित्त रहित अध्ययन, लक्ष्य प्राप्ति में बाधक होता है। एकाग्र बुद्धियुक्त अध्ययन एवं परिश्रम करते हुए जो लक्ष्य की प्राप्ति में तल्लीन होते हैं उनकी आवाज, दृष्टि, पोशाक और व्यावहारिक कर्मशीलता स्पष्ट झलकती है और सफलता प्रदान कराती है। अपनी समस्त इन्द्रियजन्य शक्तियों को, समय को, चित्त को एक लक्षित उद्देश्य में लगा देने से जो स्थिति बनती है वही एकाग्रता कहलाती है। प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेन्स का कथन है कि ''ध्यान-एकाग्रता एक उपयोगी, निरापद, निश्चित, लाभदायक और प्राप्त करने योग्य गुण है।''

जीवन के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में एकाग्रता ने अपना प्रभुत्व बनाए रखा है। खिलाड़ी चाहे कितना ही सशक्त एवं मेहनती हो, यदि उसमें एकाग्रता का अभाव है तो 'गेंद' का लक्ष्य छूट जाएगा। गायक, वादक, चित्रकार, राजनेता या व्यापारी सभी अपने कला–कर्म क्षेत्र में एकाकार हो जाएं तभी सफलता एवं प्रशंसा प्राप्त होती है। यहां तक कि लेखक, कवि या साहित्यकार भी यदि अपनी एकाग्र बुद्धि से विषय विशेष पर चिंतन कर लिपिबद्ध करता है तो निश्चित रूप से प्रशंसनीय रचना समाज को मिलती है। महाभारत के अर्जुन का उदाहरण सदैव एकाग्रता हेतु दिया जाता है, अर्जुन को मात्र अपने लक्ष्य पर एकाग्र नजर थी तभी पक्षी की आंख की पुतली पर संधान कर सका। इसीलिए हमें किसी भी छोटे–बड़े काम में जुटना हो तो उस समय संसार की और कोई बात सामने नहीं होनी चाहिए।

एकाग्रता केवल कल्पना से नहीं आती है, इसे खरीद भी नहीं सकते, किसी अन्य से प्रेरणा द्वारा केवल इच्छा जागृत होती है जब हमें स्वयं ही शनैः शनैः अभ्यास द्वारा एकाग्र वृत्ति का विकास करना पड़ता है। कुछ लोग ऐसा कथन कहते हैं कि अपने मन को पहले एकाग्र कर लो जब गुरु–सद्गुरु, मंदिर, आदि जाना चाहिए। यह कथन असंगत है। हमें अपने मन को एकाग्र करने हेतु ही मंदिर जाना होगा, कथा सुननी होगी एवं गुरु–सद्गुरु के निकट बैठ अभ्यास करना होगा तब कहीं एकाग्रता का अभ्यास तथा प्राप्ति हो सकती है– जिस हेतु दृढ़ निश्चय भी आवश्यक है।

हमें सर्वप्रथम एक उद्देश्य सामने रखना होगा, फिर उसकी प्राप्ति हेतु रास्ता नियत करना होगा, तब तदनुसार अपने प्रयासरूपी कदमों को साहस और दृढ़ता व एकाग्रता से बढ़ाना चाहिए। हम अपनी क्षमता, योग्यता एवं शक्ति को बिखरने न दें। यदि हमने इन्हें दस दिशाओं में बांट दिया तो हम निर्बल एवं उत्साहहीन हो जायेंगे और एक दिशा में भी सफलता की उपलब्धि नहीं हो पायेगी।

जीवन में कुछ लोग हमारे कार्यों एवं सफलता के मार्ग में अड़चने भी पैदा कर सकते हैं, रास्ते से भटकाने के लिए कोई प्रलोभन भी दिया जा सकता है, हमें कर्तव्यपथ पर सत्यता से बढ़ने में रूकावटें पैदा की जा सकती है जिससे हमारी एकाग्रता भंग हो जाए। इसलिए सतर्कतापूर्वक हम अपने लक्ष्य की सूई को एकाग्र ध्रुवतारे की ओर से कभी न हटने दें। विपत्तियों का, रूकावटों का दृढ़ता, वीरता से सामना करते हुए हम मंजिल को पाने की एकाग्रता भंग नहीं होने देवें। हमारे भीतर आलस, आरामतलबी तथा आकर्षक सुविधाओं की चाह जैसी मानवीय कमजोरियां भी हैं– किन्तु इन सब पर विजय प्राप्त करके लक्ष्य को पूरा करने की ललक हमें हमेशा बनाये रखनी होगी। यही सब कुछ मानवीय एकाग्रता के मानदंड हैं जिन पर चलकर हमारे राष्ट्र के कर्णधारों ने स्वतंत्रता प्राप्त की है। जहां एकाग्रता है वही जीवन के हर क्षेत्र की सफलता निहित है।

–16–राघवेन्द्र नगर, ग्वालियर–474002 (म.प्र.)

साहित्य एक चिराग

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी

साहित्य महापुरुषों के विचारों का अक्षय–कोष है। संसार रूपी रोग को नष्ट करने के लिए अद्भुत औषध है। सत्य और सौन्दर्य से भरा हुआ स्टीमर है। वह युवावस्था में मार्गदर्शक और वृद्धावस्था में आनन्ददायक है। वह एक अद्भुत शिक्षक है। शिक्षक चाबुक मारता है, वह कठोर शब्दों में फटकारता है और पैसे भी लेता है पर यह न चाबुक मारता है, न कठोर शब्दों में फटकारता है और न पैसे ही लेता है। किन्तु शिक्षक की तरह उपदेश देता है। यह युवावस्था में भी वृद्ध जैसा अनुभवी बना देता है। आस्टिन फिलिप्स ने कहा था ''कपड़े भले ही पुराने पहनों पर पुस्तकें नई–नई खरीदो।''

जिन घरों में सद्साहित्य का अभाव है वह घर आत्मा–रहित शरीर के सदृश है। साहित्य समाज की आंख है, एक चिराग है जो अंधकार में भी आलोक प्रदान करता है।

संदीप फाफरिया 'सृजन'

नई ऊर्जा और स्फूर्ति को जीएं

आज कैरियर और कॉम्पीटीशन के कारण स्टूडेंट्स अक्सर टेंशन में रहते हैं। तनाव के कारण वे न तो ठीक से नींद ले पाते हैं और ठीक से ही खा पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सेहत पर गलत असर पड़ता है और वे एकाग्र नहीं कर पाते हैं। इससे चिड़चिड़ाहट और गुस्सा पैदा होता है और इससे परेशानियां भी पैदा होने लगती हैं।

इसलिए किसी भी स्टूडेंट्स के लिए यह जरूरी है कि वह तनाव न पाले। कल की चिंता में यह तनाव कई गुना बढ़ जाता है। इसलिए सबसे पहले तो यह किया जाना चाहिए कि कल की चिंता करना छोड़ देना चाहिए और अपने को आज पर केन्द्रित करना चाहिए। इससे तनाव कुछ हद तक कम हो जाता है। आज तनाव को दूर करने के लिए कई उपाय है। इन्हें अपनाकर तनाव दूर किया जा सकता है। अपने को बेहतर ढंग से एकाग्र कर आसानी से लक्ष्य हासिल किये जा सकते हैं।

गहरी सांस लें

सबसे पहले कल की चिंता में किये जाने वाले तमाम विचारों को भूल जाइए। सिर्फ आज और अभी के क्षण में रहिए और गहरी सांसें लीजिए। इससे आपको बहुत राहत मिलेगी। आप कल की चिंता करना छोड़कर आज में जीने लगेंगे। इसके लिए जरूरी है कि आप अपने भीतर आंतरिक दुनिया में अपने को बहुत शांति में महसूस कीजिए और आप अपने घर में एक स्थान चुन लें, जहां यह अभ्यास नियमित कर सकें। सार्वजनिक स्थानों पर भी यदि मानसिक तनाव पैदा होता हो तो 8-10 गहरी सांसें आपको तनाव मुक्त करने में सहायक होगी।

एक बात पर ध्यान केन्द्रित करें

किसी एक खास चीज पर अपने को एकाग्र करें। उसका आनंद लें। जैसे यदि आप खाना खा रहे हैं तो सिर्फ उस खाने का आनंद लें। हर चीज का स्वाद लें। इससे आप किसी एक वक्त में किसी एक चीज पर अपने को एकाग्र करने का अभ्यास कर सकते हैं। यह अभ्यास आप संगीत सुनते हुए, खेलते हुए और पढ़ते हुए भी कर सकते हैं। इससे आप धीरे-धीरे बेवजह के तनावों से मुक्त होने लगेंगे। मानसिक संतुलन बनाये रखने और याद्दाश्त बढ़ाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है।

अच्छी नींद लें

जब आप रात को बिस्तर पर जाएं तो दूसरे दिन की तमाम चिंताओं को तकिए के नीचे दबा दें। सब कुछ भूलकर अपनी बॉडी को रिलेक्स रखें। सोने के एक दो घंटे पहले खाना खा लें। हल्के और आरामदायक कपड़े पहनें। हल्का संगीत सुने या थोड़ी देर टेस्ट बुक्स के अलावा कुछ और पढ़ें, जिसमें आपकी दिलचस्पी हो। रात को कहानी या उपन्यास पढ़कर सोया जाए तो एक अच्छी नींद की तैयारी होगी और इससे अच्छी नींद आयेगी। जो आने वाली सुबह को खुश रंग बना देगी।

एक्सरसाइज करें

कई बार तनाव होने के कारण स्टूडेंट्स कई तरह की आदतों के शिकार हो जाते हैं। वे सिगरेट से लेकर बार-बार चाय-कॉफी पीने या फिर शराब या अन्य किसी नशे के आदि हो जाते हैं। यह एक मिथ है कि सिगरेट या शराब पीने से तनाव दूर हो जाता है। जबकि ऐसा नहीं है, इसलिए इनसे परहेज करें। बेहतर होगा कि आप खूब पानी पीएं और रोज कम से कम आधा घंटा एक्सरसाइज करें। कई शोध बताते हैं कि नियमित एक्सरसाइज तनाव को कम करती है।

उम्मीद की लौ जलाए रखें

निराशा से बचने की कोशिश करें। किसी भी तरह के निराशावादी विचार पर ज्यादा देर न सोचते रहें। आशावादी बनेंगे तो निराशाजनक विचार नहीं आयेंगे। उम्मीद पर दुनिया टिकी है तो फिर आप उम्मीद करना क्यों छोड़ते हैं। इसलिए उम्मीद की एक लौ हमेशा जलाएं रखें।

सबसे पहले कल की चिंता करना छोड़ देना चाहिए और अपने को आज पर केन्द्रित करना चाहिए। इससे तनाव कुछ हद तक कम हो जाता है।

यह आपमें आत्मविश्वास पैदा करती है।

खूब हंसे-खिलखिलाएं

यह बिल्कुल सही है कि कॉलेज, कैम्पस और कैरियर के चक्कर में स्टूडेंट्स चक्करघिन्नी हो जाते हैं। लगातार कॉलेज से कोचिंग क्लासेस के बीच दौड़ते-हांफते हुए उन्हें हंसी के पल कम ही मिल पाते हैं। इसलिए स्टूडेंट्स के लिए यह जरूरी है कि वह हंसने खिल-खिलाने के पल को यूं जाया न हो जाने दें। कहा भी गया है कि हंसना-खिलखिलाना टॉनिक का काम करता है। यह आपको मानसिक शांति तो देता ही है, साथ ही नई ऊर्जा और स्फूर्ति से भी भर देता है। इसलिए खूब हंसे और खिलखिलाएं। मन की शांति बाजार में नहीं मिलती उसे अपने अंदर से पैदा करना यदि सीखना है तो हंसना बहुत जरूरी है।

प्रधान संपादक 'शब्द प्रवाह'
-ए-99, व्ही. डी. मार्केट,
उज्जैन-456006 (म.प्र.)

जीवनचर्या

साध्वी कल्परसाश्री

अहिंसा का तेजस्वी होना

अहिंसा मानवीय जीवन की कुंजी है, अत: इसका सामयिक और इहलौकिक ही नहीं, बल्कि सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महत्व है। अहिंसा हमारे व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला है। अहिंसा सभी महापुरुषों के जीवन का आभूषण है। अनेक कालजयी व्यक्तित्व ऐसे अमिट हस्ताक्षर छोड़ जाते हैं, जो स्वयं ही अहिंसक जीवन नहीं जीते, वरन् समाज को भी उसका सक्रिय एवं प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देते हैं। इस दृष्टि से भगवान महावीर, बुद्ध, गांधी को मानव जाति कभी भूल नहीं पायेगी। अहिंसा विश्वजनिन तत्त्व है उस पर सबका अधिकार है, चाहे वह हिन्दु हो या मुस्लिम, सिख हो या ईसाई, जैन या बौद्ध। अहिंसा विश्व व्यापी बने, जन-जन के मानस में उतरे यह वर्तमान की अनिवार्य अपेक्षा है। एक बार पुन: अहिंसा की शक्ति को हमने इजिप्ट में जीवंत होते हुए देखा है। अठारह दिनों का संघर्ष और उसमें अहिंसा की शक्ति से हुए परिवर्तन ने एक बार पुन: सम्पूर्ण विश्व में जैनधर्म की अहिंसा और भारत में महात्मा गांधी के अहिंसक आन्दोलन से मिली स्वतंत्रता के ऐतिहासिक पलों की स्मृतियों को ताजा किया है। मिस्त्र में राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक का इस्तिफा किसी आतंक या नासमझ हत्याओं की नहीं बल्कि अहिंसा की निष्पत्ति है। संभावना है कि इसी अहिंसा की शक्ति से एक स्वस्थ एवं उन्नत समाज की आधारशिला रखी जायेगी।

गणि राजेन्द्र विजय के शब्दों में- ''अहिंसा केवल धर्म का ही गौरव नहीं है, बल्कि शांतिपूर्ण जीवन की जान है, अहिंसा वह अमृत है जो समाज व राष्ट्र को जीवित रखता है।'' गणि राजेन्द्र विजयजी के पास कोई भौतिक बल नहीं, फिर भी वे प्रेम, करुणा, सद्भावना के बल पर आदिवासी जनजीवन के बीच अहिंसक क्रांति का शंखनाद कर रहे हैं। हाल ही में उन्होंने गुजरात के बडोदरा एवं छोटा उदयपुर के आदिवासी अंचल में चालीस दिवसीय ज्ञानज्योति अभ्युदय यात्रा की, जिसमें उन्होंने अविराम गति से लोगों को सही इंसान बनाने का कार्य किया। उन्हें नशामुक्त बनाया ही नहीं बल्कि करीब 100 से अधिक शराब के ठेके बन्द करवाये। आपसी नफरत,घृणा एवं द्वेष की स्थितियों को विराम देकर दिलों को नजदीक लाये। दो ग्रामों में तो हिंसा की व्यापक एवं विषम स्थितियां न केवल स्थानीय प्रशासन बल्कि राज्य सरकार तक के लिये चुनौती बनी गयी थी, दो ग्रुप हथियारों से लैंस एक-दूसरे को मारने के लिये उजावले थे, कोई समझौते या हिंसा पर नियंत्रण की संभावना नहीं थी, इन जटिल हालातों में गणिजी ने अकंपित एवं निडर भाव से अहिंसा का प्रयोग किया और वह सफल हुआ। गणिजी के इस अहिंसात्मक प्रयोग से पारस्परिक सौहार्द एवं सामंजस्य का सुन्दर वातावरण निर्मित हुआ एवं उलझी हुई गुत्थी को एक समाधायक दिशा मिल गयी। अहिंसा और नैतिकता की शक्ति को न केवल भारत के किसी आदिवासी अंचल में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तेजस्वी होते हुए देखा गया है।

भगवान महावीर ने कहा–अहिंसा निउणं दिट्ठा, सव्व भुएसु संजमो अर्थात संपूर्ण जीवों के प्रति संयम पूर्ण व्यवहार अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ प्राणों का विच्छेद करना ही नहीं, उसका अर्थ है- मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों को शुद्ध रखना।

महावीर ने अहिंसा की अत्यंत सूक्ष्म, नितांत मौलिक और वैज्ञानिक तरकीब से व्याख्या की, आज के समय में अहिंसा सर्वाधिक प्रासंगिक हो सकती है, व्यष्टि से लेकर समष्टि तक की समस्त समस्याओं का समाधान अहिंसा में है, पूरे विश्व में हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या के काले नाग एक दूसरे को डंसने का प्रयत्न कर रहे हैं, ऐसे समय में अहिंसा को शक्तिशाली बनाने की जरूरत है।

अहिंसा आचारदर्शन का प्राणतत्व है, यह वह धुरी है, जिस पर समग्र दर्शन प्रतिष्ठित है आचार की ऊंची मीनार का निर्माण अहिंसा ही कर सकती है, अहिंसा के बिना आचार का कोई मूल्य नहीं है।अहिंसा सब आश्रयों का हृदय और सर्वशास्त्रों का उत्पत्ति स्थल है। भगवान महावीर स्वयं अहिंसा के महान व्याख्याता ही नहीं प्रयोक्ता भी थे, उनके धर्म का आधार अहिंसा था और जीवन व्यवहार भी। अहिंसा के अभाव में आज जगत में संस्कृति और धर्म का ह्रास मानवता के साथ खिलवाड़ है। इस भौतिकवादी दौड़ ने जीवन को अस्त-व्यस्त, दुर्भर और बोझिल बना दिया है।

महावीर की अहिंसा ही सर्वनाश से बचने की राह है। अहिंसा में इतनी शक्ति है कि वह विरोधियों, दुश्मनों को भी मित्र बना सकती है। अहिंसा निर्बल या डरपोकों की नहीं, अपितु वीरों का धर्म है।

अहिंसा ही मानवीय और नैतिक मूल्यों की स्थापना कर मानव को शांति की दिशा में प्रेरित कर सकती है। अहिंसा सच्चा मानव धर्म है, हमारे जीवन का मूल है और मूल को ही भूल गये तो शूल ही मिलेंगे, फिर फूल की आकांक्षा व्यर्थ है।

भगवान महावीर ने अहिंसा के महत्व को दर्शाते हुए कहा–'अहिंसा सव्वभूय खेमंकरी' अर्थात अहिंसा सब प्राणियों के लिए क्षेमंकर, आरोग्यदायिनी, संरक्षक और पोषक है। गांधीजी ने यंग इंडिया नामक पत्रिका में लिखा- मेरा विश्वास है कि हिंसा से अहिंसा की मर्यादा बलवती है। प्रत्येक व्यक्ति को अहिंसात्मक नीति को अपनानी होगी। वस्तुत: राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने जीवन व्यवहार में सत्य और अहिंसा को व्यावहारिक कर आधुनिक विश्व में एक अनूठा उदाहरण उपस्थित किया।

अहिंसा परमोधर्म: जैन दर्शन का ही नहीं अपितु सभी धर्मों का महत्वपूर्ण और धर्म के साधनों में भी अहिंसा का सर्वोपरि स्थान है। अहिंसा हाथी के पांव के समान और जैन दर्शन के साथ-साथ वैदिक दर्शन में भी अहिंसा को सर्वोच्च स्थान दिया गया। वस्तुत: जैन दर्शन में हिंसा-अहिंसा का संबंध जीवों के जीवन-मरण या सुख-दु:ख से उतना न होकर आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष, मोह आदि विचारों से, परिणामों से है।

मनुष्य के भीतर जो हिंसा के भाव है, उनका परिष्कार अपेक्षित है जिससे चेतना में उठने वाली हिंसा की तरंगें स्वत: समाप्त हो जाती हैं। हिंसा वर्तमान युग की जटिल समस्या है, जन मानस हिंसा एवं आतंक की त्रासदी से गुजर रहा है। ऐसी स्थितियों में गणि राजेन्द्र विजय के सुखी परिवार अभियान ने एक नई दिशा दी। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांप्रदायिक आदि सभी समस्याओं का समाधान मिला। जन-चेतना को जागृत करना और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना ही इस अभियान का उद्देश्य है। जो साम्प्रदायिकता नहीं, ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं, स्वार्थ नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक व्यापकता है, जो संकुचितता और संकीर्णता को दूर कर एक विशाल सार्वजनिक भावना लिये हुए है। ■

साध्वी मुदितयशा

पालनहार मां कर्णधार बच्चा

वैज्ञानिक क्रेग वेंटर ने अपनी नवीनतम खोजों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि हमारे विचारों में होने वाली हर उथल–पुथल गर्भ में पल रहे भ्रूण को भी प्रभावित करती है।

महाभारत के चक्रव्यूह के भेदन का प्रसंग है। कहा जाता है कि अभिमन्यु जब सुभद्रा के गर्भ में था, तब अर्जुन एक दिन सुभद्रा को चक्रव्यूह-भेदन की कला के बारे में बता रहे थे। चक्रव्यूह को भेदकर बाहर कैसे निकला जाए–यह बताने ही वाले थे कि अचानक सुभद्रा को झपकी आ गई। अपनी मां के गर्भ में पल रहे अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को भेदकर अंदर प्रवेश की विधि तो सीख ली, पर मां को नींद आ जाने की वजह से बाहर निकलने की विधि से वह अनभिज्ञ रह गया। कालांतर में वही अनभिज्ञता उसकी मृत्यु का कारण बनी।

गर्भस्थ शिशु और वातावरण

एक गर्भसथ शिशु बाहर की बातें कैसे सीख सकता है? बाह्य वातावरण के प्रकंपनों से गृहीत संस्कार टिकाऊ कैसे बनते हैं? क्या एक भ्रूण की ग्रहणशक्ति इतनी प्रखर हो सकती है? इन सभी प्रश्नों का अब तक परम्परागत ढंग से खोजा जाता रहा है। जबकि आज ये बातें विज्ञान की कसौटी पर चढ़ चुकी हैं। आज अमेरिका जैसी बाहरी प्रयोगों के द्वारा बच्चों को गर्भ में ही बहुत-कुछ सिखाने की कोशिशें चल रही हैं। कुछ दशक पूर्व ऐसी मान्यता थी कि हमारे व्यक्तित्व का निर्धारण 'जींस' के आधार पर होता है। 'जींस' को बदला नहीं जा सकता–यह एक बद्धमूल अवधारणा थी, पर आज यह अवधारणा बदल चुकी है। वैज्ञानिक क्रेग वेंटर ने अपनी नवीनतम खोजों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि हमारे 'जेनेटिक-कोड' कठोर नहीं होते। उन पर वातावरण का बहुत प्रभाव होता है। हमारे विचारों में होने वाली हर उथल-पुथल गर्भ में पल रहे भ्रूण को भी प्रभावित करती है।

वर्तमान युग में विकास के साथ-साथ तनाव भी बढ़ा है। निरन्तर तनाव से घिरा आज का मानव एक विकृत मानसिकता के दौर से गुजर रहा है। विकृत मानसिकता 'गर्भस्थ भ्रूण' पर विपरीत असर डाल सकती है। यही वजह है कि आज बहुत-सारे बच्चे जन्म के साथ अनेक विकृतियां लेकर आते हैं। शारीरिक दृष्टि से भी विकलांगता का 'ग्राफ' काफी ऊपर उठ रहा है।

बच्चा जन्म के वक्त अबोध होता है। बहुत-सारी बातों का बोध वातावरण कराता है। एक बच्चा सांप के पास भी चला जाता है और आग में हाथ डालते हुए भी वह भयभीत नहीं होता। धीरे-धीरे वातावरण भी उसे सिखाता है कि कहां डरना चाहिए और कहां नहीं डरना चाहिए। कहां, किससे, कितनी सुरक्षा आवश्यक है, यह प्रशिक्षण आस-पास के वातावरण से ही मिलते हैं।

गर्भस्थ शिशु के विकास में मां की सजगता

प्रतिस्पर्धा के इस युग में हर मां-बाप का एक सपना होता है कि उनका बच्चा प्रगति की दौड़ में सदा आगे रहे। उसका भविष्य उज्ज्वल, उज्ज्वलतर हो और बच्चा बड़ा होकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए। ऐसा सोचने वाली माताओं को अपने गर्भकाल से ही सजगता बरतनी चाहिए। क्योंकि बच्चों के निर्माण की प्रक्रिया गर्भ से ही प्रारंभ हो जाती है। यह आवश्यक है कि गर्भकाल के दौरान माताएं खान-पान, रहन-सहन के प्रति संयत रहें। कलह और कदाग्रह से दूर रहती हुई निरंतर प्रसन्नता में निमज्जन करती रहें। पवित्र भावधारा और पुलकन-भरे वातावरण में जीने वाली महिलाएं बच्चों के व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती हैं। इसके विपरीत जो माताएं निरंतर कुंठित और अवसादग्रस्त रहती हैं, कलहपूर्ण माहौल में जीती हैं–वे अपनी होने वाली संतति के साथ कभी न्याय नहीं कर पातीं। हमारे प्राचीन आगमों में गर्भकाल के दौरान मां की दिनचर्या, रात्रिचर्या के बारे में सुंदर और अर्थवान दिग्दर्शन मिलते हैं।

कैसी हो गर्भवती महिला की जीवनचर्या?

हमारी आगम शृंखला में ज्ञातधर्मकथा एक महत्वपूर्ण और कथाप्रधान आगम है। इस ग्रंथ के प्रथम अध्ययन में राजा श्रेणिक और महारानी धारिणी के पुत्र राजकुमार मेघ के जीवन का विस्तार से निरूपण है। राजकुमार मेघ जब मां के गर्भ में था, उस समय महारानी धारिणी की चर्या कैसी थी, इसका विवेचन मन को आकृष्ट करने वाला है। इसमें बताया गया है कि महारानी धारिणी संयमपूर्वक बैठती, संयमपूर्वक सोती, संयमपूर्वक खड़ी होती और अपनी हर क्रिया संयमपूर्वक करती।

धारिणी का उस दौरान आहार कैसा था–इस विषय में सूत्रकार ने लिखा है–नाइतित्त, नाइकडुयं, नाइकसायं, नाहअंनिलं, नाइमहुरं, जं तस्स गन्मस्स हियं मियं पत्थसं देसे य काले यह आहरं आहारेमाणी–वह आहार करती हुई भी कभी अतिरिक्त, अतिकड़वा, अतिकसैला, अतिखट्टा और अतिमीठा आहार नहीं करती। वह वही आहार करती जो देश और काल के अनुसार गर्भ के लिए हित, मित, व पथ्यकर होता।

धारिणी की मनोदशा का चित्रण करते हुए ग्रंथाकार लिखते हैं–ववगयचिंता सोय मोह भय परितासा–वह चिंता, शोक, मोह, भय और परित्रास से मुक्त रहती हुई विहार करती।

इन सारे विश्लेषणों से यही निष्कर्ष निकलकर सामने आता है कि एक स्वस्थ और संस्कार-संपन्न बच्चे के जन्म लेने से पहले, गर्भावस्था के दौरान मां के द्वारा अनुसृत आचारसंहिता की महनीय भूमिका रहती है।

संयुक्त परिवारों में संस्कार निर्माण

जन्म के बाद बच्चे की परवरिश का क्रम प्रारंभ होता है। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, अभिभावकों के दायित्व की सीमाओं का भी विस्तार होता जाता है। एक युग था जब संयुक्त परिवारों की प्रथा थी। कई पीढ़ियां एक साथ एक छत के नीचे रह लेती थीं। उस समय बच्चा सिर्फ मां के संरक्षण तक सीमित नहीं रहता था। परिवार के लिए रीढ़ बनकर जीने वाले बड़े-बुजुर्गों की अनुभवशील व वत्सलता-छांह में पलकर बच्चा कब बड़ा हो जाता–मां को एहसास भी नहीं होता था। इतना ही नहीं, दादा-नानी के द्वारा कही जाने वाली कहानियां भी बच्चे के लिए प्रेरक बोधपाठ का कार्य करती थीं। इससे बच्चों के कोमल मन पर संस्कारों की ऐसी रेखाएं अंकित हो जाती थीं जो बच्चे के लिए आजीवन दिशादर्शक का कार्य करतीं। ■

अंक विज्ञान

नीता बोकाड़िया

न्यूमरोलॉजी में नंबर 2 का महत्व

पहले आपने एक्ट्रोवर्ट नंबर वन लोगों के विभिन्न पहलुओं का जायजा लिया था। अब जानिए चुप-चुप से रहने वाले नंबर-2 की ताकत का राज।

किसी भी महीने की 2, 11, 20 और 29 तारीख को पैदा हुए लोगों का रूलिंग प्लेनेट या स्वामी ग्रह चंद्रमा होता है। नंबर-2 'जीव संख्या' है, जो दिल और दिमाग तथा व्यक्ति की अंतरात्मा को अभिव्यक्त करता है। दरअसल यह मातृत्व से भरी जीवनदायी ऊर्जा जरूर है, यह क्रिएटिव भी है, पर यह सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। चंद्रमा व्यक्ति के स्वभाव को चंचल तो बनाता ही है पर वह व्यक्ति को संवेदनशील भी बनाता है और रूमानी भी। ये लोग मूडी, अमनपसंद और नाजुक मिजाज होते हैं तथा संगीत और कविता जैसी कलाओं में इनका मन खूब रमता है। ये जरा चुप्पा भी होते हैं।

नंबर-1 लोगों की तरह ये शारीरिक तौर पर उतने क्षमतावान नहीं होते। इनकी सारी क्षमताएं मानसिक स्तर पर सक्रिय रहती है। अपने स्वभाव और व्यवहार में ये नंबर-1 लोगों से ठीक विपरीत होते हैं।

बुध, शुक्र, शनि, राहु और केतु से इनकी लगातार तकरार होती रहती है, पर इनके पास सूर्य, मंगल और गुरु जैसे दोस्त भी होते हैं। जब भी नंबर-2 व्यक्ति आहत होता है, वह सख्त, मजबूत और लड़ाकू बन जाता है एवं अपने इरादों और फैसलों से डिगता नहीं है। दोस्ती इनके लिए बहुत पवित्र होती है और ये दूसरों के लिए अपना सब कुछ लुटा देते हैं। ये अपने घर-परिवार से गहरे तक जुड़े होते हैं, पर झीलें, नदियां और झरने भी इन्हें खूब लुभाते हैं। अस्थिर स्वभाव, बेचैन मन और झूलते आत्मविश्वास के बावजूद ये अकेले रहने के बजाय ग्रुप में रहना पसंद करते हैं। जिस उत्साह व जोश से ये लोग कार्य प्रारंभ करते हैं उसे पूरा नहीं कर पाते, बल्कि कार्य को बीच में छोड़कर दूसरा प्रारंभ कर देते हैं।

नंबर-2 लोगों को अपने महत्वपूर्ण कामों की शुरुआत किसी भी महीने की 2, 11, 20 और 29 तारीख को करना चाहिए। खासकर 20 जून से 27 जुलाई के बीच। उल्लेखनीय यह भी है कि इनका समानधर्मी नंबर-7 भी इनके लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। मसलन 7, 16 और 25 तारीख को पैदा हुए लोग। नंबर-2 लोगों के लिए सोमवार और रविवार विशिष्ट होते हैं और इनके भाग्यशाली रंग होते हैं व्हाइट, ग्रीन और क्रीम। शिव की भक्ति और सोमवार का व्रत इनके लिए लाभदायक होता है।

-मो. 09920374449

कुछ खास नंबर-2 हस्तियां

महात्मा गांधी	2 अक्टूबर
अमिताभ बच्चन	11 अक्टूबर
आचार्य तुलसी	20 अक्टूबर
ओशो रजनीश	11 दिसम्बर
राजीव गांधी	20 अगस्त
दिलीप कुमार	11 दिसम्बर

स्वाभिमानी ही देशप्रेम कर सकता है

डॉ. महावीरराज गेलड़ा

वर्षों पुरानी बात है। उन दिनों नेपाल रत्न-कंबल के लिए विख्यात था। कुछ व्यापारी रत्न-कंबल लेकर राजगृह पहुंचे। राजगृह समृद्ध मगध की राजधानी थी। मगध के सम्राट श्रेणिक का अभिवादन कर व्यापारियों ने रत्न कंबल दिखाए। रत्न कंबल अत्यंत सुंदर थे। एक-एक कंबल का मूल्य सवा लाख मुद्राएं था। इतना अधिक मूल्य सुनकर सम्राट ने इन्कार कर दिया। मगध सम्राट की यशोगाथा सुनकर वे आये थे, उन्हें आशा थी कि ये कीमती कंबल सम्राट अवश्य खरीदेंगे। पर वे उदास होकर प्रासाद से निकले। वे मगध एवं राजगृह के बारे में हल्की और निन्दनीय बातें करते जा रहे थे। जो सम्राट एक कंबल नहीं खरीद सकता, उसका वैभव क्या होगा?

शहर के एक भवन में भगवान महावीर की भक्त भद्रा नाम की महिला अपने वातायन में बैठी थी। उसने व्यापारियों की बातें सुनी। मगध के प्रति अवज्ञापूर्ण शब्दों को वह सहन न कर सकी। उसका स्वदेश प्रेम जाग उठा। उसने व्यापारियों को बुलाया और चारों रत्न कंबल खरीद लिए। लाखों मुद्राएं पाकर व्यापारी अवाक् रह गए। दूसरे दिन महारानी को पता चला कि रत्न कंबल बेचने वाले आये हैं। महारानी ने महाराज से एक कंबल खरीदने के लिए कहा। मगध के व्यापारियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि कंबल सब बिक गये हैं। सम्राट ने आश्चर्य से कहा कि जब मैं एक कम्बल भी नहीं खरीद सका तो शहर में कौन है जिसने सभी कंबल खरीद लिए हैं।

सेठानी भद्रा का पता लगते ही सम्राट उसके घर पहुंचा। भद्रा ने सारी बात बताई और कहा कि उन कंबलों के टुकड़े कर, बहुरानियों के पैर पूछने के लिए बांट दिये हैं। भद्रा ने कहा-राजन् पैसा तो आता-जाता रहता है लेकिन अपने देश की यशकीर्ति अगर एक बार उतर जाती है तो उस वैभव-गाथा को बनाने में कई सदियां पूरी हो जाती है। मैंने सब कुछ दे डाला लेकिन देश की अपकीर्ति नहीं सुनी।

देश, ऐसे स्वाभिमानी लोगों के कर्तव्य पालन से ही, अपनी संस्कृति को अमर करता है। जो व्यक्ति अपनी धन-सम्पदा, शक्ति का उपयोग देश और समाज के लिए कर्तव्य पालन की दृष्टि से करते हैं, वे ही सच्चे नागरिक हैं। जो व्यक्ति अपने देश के लिए अवज्ञापूर्ण शब्द बोलते हैं या सुनते हैं वे स्वयं का तथा देश के स्वाभिमान को नष्ट करते हैं।

-5, सीएचए, जवाहर नगर
जयपुर-302004 (राजस्थान)

कविताएं

बेटियां

॥ उर्मि कृष्ण

प्यार की घनी छांव हैं ये बेटियां
भर देती जिंदगी के अभाव ये बेटियां
बापू की आन में
पति की शान में
चाचा ताऊ
और जेठ देवर
के भार में
मन के गुबार को,
सद्भावना के नीचे
दफना रही हैं ये बेटियां
कुल की लाज में
सपूतों के निर्माण में
अपने अरमान को
मौन में–
पी रही हैं ये बेटियां
कला की आड़ में
सौंदर्य के गुमान में
रंगमंच हो या टी.वी.
बेटी हो या बीवी
अखबार हो या पत्रिका
उघाड़ी जा रही हैं ये बेटियां
आग की आंच पर
चौपड़ की बिसात पर
सीता सावित्री के नाम पर
हर युग में दांव पर
लगी हैं ये बेटियां
तुम कुछ भी कहो
कुछ भी करो
हर युग में मिटती आई हैं ये बेटियां
घर को संवारती
जग को सुधारती
कभी न हारती
नया जन्म फिर फिर
लेती हैं ये बेटियां
नया जन्म फिर फिर
देती हैं ये बेटियां

–ए–47, शास्त्री कॉलोनी
अम्बाला छावनी–133001 (हरियाणा)

सहज–सरल

॥ आचार्य महाप्रज्ञ

सहज सरल जीवन की पोथी,
बड़ा जटिल अनुवाद हो गया,
पद पद के लघु विश्रामों पर,
कैसा घोर विवाद हो गया।

यत्न भूलने का करते–
करते भी वह याद हो गया,
विरस रहा इतना रस भरते–
भरते भी बेस्वाद हो गया।

गोप्यं गोप्यं पुनरपि गोप्यं,
कहते–कहते नाद हो गया,
त्याज्यं त्याज्यं की रट भरते–
भरते भी आबाद हो गया।

आत्मा है संगुप्त और अब,
बात–बात का वाद हो गया,
श्रद्धा है संगुप्त और यह,
तर्क एक उन्माद हो गया।

अन्तदर्शन लुप्त और यह,
चंचल मन आजाद हो गया,
घटना है अत्यल्प किन्तु यह,
बहुत बड़ा संवाद हो गया।

बचपन

॥ संजय खटेड़

निश्छल है जिनका मन,
न कपट न कोई चिंतन,
नाजुक है जिनका बदन,
जैसे खिलता हुआ गुलाब।
बचपन कितना लाजवाब।।

जात नहीं कोई पात नहीं,
संप्रदाय की बात नहीं,
जीत नहीं कोई मात नहीं,
जैसे खुशबू भरा गुलाब।
बचपन कितना लाजवाब।।

सबका वो मन बहलाते,
हँसते–गाते खुशी मनाते,
तनिक ठेस से वो मुरझाते,
काँटों से ज्यूँ घिरा गुलाब।
बचपन कितना लाजवाब।।

मन की मृत्यु

॥ आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य'

यूं देखने में मन के हजार ठिकाने है
पर वह टिकता कहीं भी नहीं।

उसे तो हर पल कुछ नया चाहिए
पुराने से वह जल्दी ही ऊब जाता है।
जिस नए को खोजता है–
मिलने पर वह भी
उसी क्षण पुराना हो जाता है।

बस यही है मन की दौड़
पुराने से नए तक
और नए से पुराने तक...
तभी तो वह चंचल है....

इस वर्तुल को तोड़ने का नाम ही–
ध्यान है,
उपासना है,
साधना है।

ध्यान दौड़ना नहीं रुक जाना है
ध्यान से इसीलिए मन डरता है
प्रथम, उस प्रक्रिया से
और भी चंचल होकर भागता है।

ध्यान उसे अपना काल लगता है–
साक्षात् मृत्यु–

ध्यान है ही मन की मौत,
ध्यान है स्थिरता
मन है चंचलता
चंचलता की समाप्ति मन की मृत्यु है।

वास्तव में देखें
तो मन का कहीं अस्तित्व ही नहीं
एक झील की लहर है–
कभी छोटी तो कभी बड़ी लहर
लहर की चंचलता यदि स्थिरता में बदल जाए,
तो लहर है ही कहां...?

लहर के शांत होने पर
वह झील ही तो है...
स्थिर...
अडिग...
और शांति...

–महादेव, सुंदर नगर, 174401 (हि.प्र.)

सुहाना सफर

॥ कपिल सिब्बल

शाहों के शाह,
हमारे नौकरशाह!
पता नहीं इन्होंने
कहां से कौन सा ज्ञान
उधार लिया है,
कि न्यूटन के
प्रसिद्ध गति के नियम को भी
सुधार लिया है।
पॉजिटिव कामों का
जरूर होना चाहिए विरोध,
ताकतवर निगेटिव प्रतिक्रिया से
बनाते हैं नए-नए अवरोध।
हर समस्या के लिए
सरकार के पास नीति है,
मंत्री के पास भी ज्ञान है
नीति को समझाने की रीति है।
जब उन्हें साफ-साफ अल्फाज में
रास्ता बताया जाता है,
तो कुछ न कुछ
ऐसा लाया जाता है
जिससे दिखती है
उस कार्रवाई की सीमा,
और इस तरह
वे फाइलों की गति को
कर देते हैं धीमा।
शायद पड़ जाते हैं
गुरुत्वाकर्षण के
सिद्धांत के फेर में,
जिन फाइलों पर
तुरंत कार्रवाई की जरूरत हो
उन्हें सबसे नीचे जगह मिलती है
ढेर में।

-'किस-किस की जय हो' पुस्तक से साभार

सहारा

॥ गोपाल नारसन

पुत्र प्राप्ति को मैंने
बुढ़ापे का सहारा समझा
परलोक संवारने का
एक किनारा समझा
जब पुत्र बड़ा हो गया
मेरा जूता उसके पैर में आ गया
तो मैं समझ गया
अब वह बेटा ही नहीं
मेरा मित्र भी है।
घर के साथ-साथ
मुझे भी संभालेगा
जैसे उसे मैंने बचपन में पाला
वैसा वह मुझे बुढ़ापे में पालेगा
लेकिन, तभी,
बेटे ने फरमान सुनाया
उसे विदेश जाना है
अच्छा कैरियर बनाना है
यह सुनते ही
मैं सकपका गया
मुझे अपना बुढ़ापा
याद आ गया।
राय लिए बिना ही
वह तो चला गया
मैं हाथ मलता ही रह गया
अब सोचता हूं
काश! बेटे के साथ-साथ
एक वृक्ष भी लगाता
छांव तो मिलती ही
कुछ फल भी खाता।

-एडवोकेट, पो.बा.नं. 81,
रुड़की (उत्तराखण्ड)

आदमी

॥ डॉ. गोपाल बाबू शर्मा

आज गुमसुम-सा खड़ा है आदमी।
द्वंद्व-द्विविद्या में पड़ा है आदमी।
जिन्दगी पूरी जिन्दगी हो गई।
कील-कांटों में जड़ा है आदमी।
टूट जाता है तनिक से लोभ में
अब नहीं ध्रुव-सा उड़ा है आदमी।
आचरण में आज कद छोटा हुआ।
अब कहां उतना बड़ा है आदमी?
दूसरों की राय तक सुनता नहीं।
बात अपनी पर लड़ा है आदमी।
खुशबुओं में बढ़ रही बदबू बहुत।
स्यात् अन्दर से सड़ा है आदमी।
आईने में देखता खुद को मगर।
शर्म से कब-कब गड़ा है आदमी?

-82, सर्वोदय नगर, सासनी गेट
अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

स्वर्ग का रास्ता

॥ सत्य नारायण भटनागर

मैं जा रहा स्वर्ग की ओर,
स्वर्ग का रंग-बिरंगा चित्र,
मानस पटल पर घूम रहा
नृत्य संगीत की मोहक ध्वनि
बुला रही है मुझे,
स्वर्ग का रास्ता कैसा भी हो,
आड़ा, तेड़ा, उटपटांग
पहुंचने को व्याकुल है मन
जो आकर्षण है मन में,
वह तो ले जा रहा नरक के द्वार,
नरक दिख रहा राह में,
झूठ, फरेब, पाखण्ड
खड़े है स्वागत को जगह-जगह
अहंकार चिघाड़ रहा हाथी सा,
सांप जैसे रास्ते आड़े तेडे
चलते दिखते है सामने
गिरगिट से रंग बदलते,
सियार जैसी आवाज निकालते,
यह कैसा मार्ग, राजनीति के जंगल सा,
क्या इन रास्तों में स्वर्ग मिलता है?
क्या स्वर्ग का मार्ग, ऐसा कटीला है?
मन में भय की कंपकपी लगती है,
दिल कहता है-स्वर्ग का रास्ता
नरक होकर ही जाता है
जो कुछ है सुगम, सीधा सरल
वह भ्रम है,
कठोर श्रम, तपस्या, साधना,
प्रेम, त्याग, पसीना, साहस
ये बनाते हैं स्वर्ग को रमणीक
ये स्वर्ग का निर्माण करते हैं
बैठे ठाले स्वर्ग नहीं मिलता,
स्वर्ग के लिए मरना पड़ता है
जो हो मरने को तैयार
उसे स्वर्ग जाना नहीं पड़ता
वह यहीं बना लेता है स्वर्ग
स्वर्ग और नरक हम ही बनाते हैं
इसी धरती पर है स्वर्ग नरक
अपना स्वर्ग बनाओं हिल-मिल कर
तुम्हारे अन्दर ही उसके बीज,
करो सिंचाई अपने श्रम से
कटीले रास्ते ठहर जायेंगे
बदल देंगे अपना रूप रंग
हरियाली की चादर बिछ जायेगी
सुवासित पवन कर रहा इंतजार
फिर नाच उठेगा मन मयूर
दिल गायेगा मधुर गान
अपना स्वर्ग बनाओं अपने श्रम से

-2, एम.आई.जी., देवरा
देवनारायण नगर
रतलाम (म.प्र.)

डॉ. रामसिंह यादव

दयालु और दानी
आदिदेव शिव

धार्मिक ग्रंथों में ब्रह्मा को सृष्टि का निर्माता, विष्णु को पालनहार और भगवान शंकर को संहारक कहा गया है। शिवनाम कल्याण वाची है और 'कल्याण शब्द' मुक्तिवाचक है। यह मुक्ति भगवान शंकर से ही प्राप्त होती है, इसीलिए वे शिव कहलाते हैं।

भारतीय देव समुदाय में शिव श्रेष्ठतम देवता है, जिसका कारण है उनकी अप्रतिम उदारता, दयालुता, आशुतोषत्व और अनन्तता। इसीलिए वे महादेव, आशुतोष, अवढ़र दानी आदि कहे जाते हैं। यदि शिव-शंकर को आदिदेव या देवाधिदेव कहा जाता है तो उसमें कोई अतिश्योक्तित नहीं है। शिव अर्थात् सभी का कल्याण करने वाले। वैसे शंकर का अर्थ भी होता है कल्याण करने वाला।

धार्मिक ग्रंथों में ब्रह्मा को सृष्टि का निर्माता, विष्णु को पालनहार और भगवान शंकर को संहारक कहा गया है। शिवनाम कल्याण वाची है और 'कल्याण शब्द' मुक्तिवाचक है। यह मुक्ति भगवान शंकर से ही प्राप्त होती है इसीलिए वे शिव कहलाते हैं। 'शि' का अर्थ है पापों का नाश करने वाला और 'व' का तात्पर्य है मुक्ति देने वाले। भगवान शिव में दोनों गुण समाहित है। इसीलिए उनका नाम शिव पड़ा। दूसरे रूप में 'शि' का अर्थ है मंगल और 'व' का अर्थ है देने वाला अर्थात मंगलदाता यानी भगवान शिवा।

वस्तुत: शिव का संपूर्ण स्वरूप, उनकी वेशभूषा, उनके द्वारा धारण किये जाने वाले उपादान प्रतीकात्मक है। श्मशान की विभूति का अविष्ट न मृत्यु और जीवन की समरसता का प्रतीक है। जीव जन्म के साथ ही क्षय की ओर अग्रसर होता है। जिसे भ्रांतिवश लौकिक शब्दावली में आयु का विकास माना जाता है। मृत्यु जन्म के साथ उपजती है वह जन्म का आदि चरण है। यह दार्शनिक सत्य शिव की विभूति में निहित है। उनका त्रिशूल जागतिक त्रिपात से उनके असम्पृक्तत्व का द्योतक है। जगत का समस्त ताप उनमें जाकर एक रस हो जाता है- परम शांति। यही कारण है कि समुद्र मंथन से उत्पन्न महाविष का वे आचमन कर गये और समाधि लगा ली। समस्त ब्रह्माण्ड का ताप पीकर नीलकंठ बन बैठे, महादेव हो गए। मृत्यु का प्रतीक सर्प उनका अलंकार है अर्थात वे मृत्युंजय हैं। काल उनकी इच्छानुसार गमनशील है, अतएव वे महाकाल हैं। उनका डमरू ध्वन्योत्पादक यंत्र है। वे ध्वनि के आविष्कर्ता हैं। संपूर्ण भाषाएं उनके डमरू की ध्वनि से ही उपजी हैं। डमरू की ध्वनि उन्मादक भी है, इसलिए वे प्रलयकाल में डमरू बजाकर नृत्य करते हैं। मृत्यु और महाविनाश में भी नृत्य। वे नटराज हैं, जगत के प्राणियों की समस्त गतिविधियों के संचालक। उनका तृतीय नेत्र अग्नि है, दोनों नेत्र सूर्य और चंद्र है, अर्थात् वे प्रकाश और ताप के अधिदेवता हैं।

वैसे शिव अनावृत रहने वाले देवता है और उनका लिंग ही प्रतीक रूप में पूज्य है। जो अनन्तता का बोधक है। किन्तु वे गजधर्म या व्याघचर्म भी धारण करते हैं जो जागतिक आवरण को स्वत: में समाहित कर लेने का प्रतीक है। वे अपनी जटाओं में गंगा को धारण करते हैं अर्थात जगततारिणी शक्ति के वे स्वामी हैं और सदैव जगत के प्राणियों के उद्धारार्थ सजग रहते हैं। इसीलिए उन्हें पशुपति कहा गया है अर्थात् अज्ञानीजनों का अज्ञान नष्ट कर उन्हें परमज्ञान से संपन्न कर उन्हें पूर्णता देने वाले सदाशिव। शिवपुराण में उल्लेख है कि नटराज या महानतर्क शिव मृत्युकला के प्रवर्तक थे- सुरताल के महान ज्ञाता थे। शिव को कहीं-कहीं महाभिषक भी कहा गया है।

शिव एक जनवादी देवता है। वे किसी प्रकार का अपने भक्तों के साथ भेदभाव नहीं रखतें। इसीलिए असूरों के प्रति भी वे समान रूप से कृपालु रहे हैं। भारतीय साहित्य का शिव वह देवता है जिसने अपनी लीला में नारी शक्ति को समादृत कर व्यावहारिक जीवन में नारी पुरुष के समीकरण को स्थापित किया है। पुरुष सूर्य है, नारी चंद्रमा। दोनों का सामंजस्य अग्नि है। शिव का तृतीय नेत्र जो ललाट पर है यही मूर्धन्य और वरणीय है। अग्नि ही ऊर्जा है, जीवनशक्ति है, मनीषा है, कर्मशक्ति है जो इन दोनों में सामंजस्य से ही संभव है। दोनों की संरचना पृथक-पृथक दिखाते हुए भी परस्पर पूरक है। यही समवेत शक्ति जगत का कल्याण कर सकती है, अन्यथा प्राणी को भटकाव और विनाश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आ सकता। इस प्रकार शिव और शक्ति प्रतीकात्मक देवता है, जिनके रूप और कर्म में जगत और जीवन के अस्तित्व आनंद और कल्याण का रहस्य निहित है।

शिव की महिमा और साधना

भगवान शिव-शंकर भोले बाबा महादेव गौरीशंकर नाम की महिमा अपरम्पार है। शिव पूजा सार्ववर्णिक सरल है। शिवलिंग की परिक्रमा या नमस्कार करने से शिव की कृपा हो सकती है। नियमपूर्वक शिवलिंग का दर्शन भी कल्याणदायक होता है। पूजा दिशा निर्णय की दृष्टि से सामान्य रूप से

दक्षिण दिशा में बैठकर उत्तराभिमुख होकर करना चाहिए। शिवोपासना में भस्मत्रिपुण्ड, शिवनाम और रूद्राक्ष यह तीनों अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भगवान शिव शंकर इतने दयालु औघड़दानी है कि भक्त की थोड़ी सी सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्रदान कर देते हैं। भगवान शिव की तीन प्रकार की पूजा में से अभिषेक के माध्यम से की जाने वाली पूजा को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें भी उन्हें भांग, धतूरा, बिल्वपत्र से पूजा अधिक प्रिय है।

शिवरात्रि का महात्म्य

तीन विशिष्ट रात्रियां मानी है- प्राचीन हिन्दू समाज के विधायक ऋषियों ने कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि। शिवरात्रि कालरात्रि है, दीपावली महारात्रि और जन्माष्टमी मोहरात्रि। भारतवर्ष में जितने भी व्रत-उपवास प्रचलित है उनमें शिवरात्रि का अलग ही महत्व है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि जिस रात्रि को पढ़ती है वह कालरात्रि या शिवरात्रि है। यह व्रत उपवास रात्रि जागरण एवं आराधना का पर्व है। शिवरात्रि को निर्जल व्रत रखा जाता है। शिवरात्रि को जागरण किया जाता है। महाशिवरात्रि भगवान शंकर के प्रदोष ताण्डव नृत्य का पर्व है। भगवान शिव को छत्तर पुष्प और बिल्व पत्र जलधारा तथा शत रूद्रिय का पाठ और पंचाक्षर मंत्र 'ऊँ नमः शिवाय' का जाप अतिप्रिय है। यह पंचाक्षर मंत्र शिव का वाचक है। शिवपूजा में लिंगोपासना का बहुत अधिक महत्व है और पूजन के पूर्व नवनिर्मित शिवलिंग की प्रतिष्ठा करना उत्तम बनाया जाता है। इसके अलावा मंदिर आदि स्थानों में जाकर भी शिवलिंग की पूजा की जा सकती है।

महाशिवरात्रि पर्व का महत्व

भगवान शिव से माता पार्वती ने एक बार पूछा कि आप किस कर्म, किस व्रत, किस तपस्या से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं? तब गौरीशंकर ने कहा फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को आश्रय कर जिस अंधकारमयी रजनी का उदय होता है उसी को शिवरात्रि कहते हैं इस दिन जो उपवास करता है वह निश्चय ही मुझे संतुष्ट करता है। इस दिन उपवास करने से मैं जैसा प्रसन्न होता हूं वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प के अर्पण से भी नहीं होता।

इस रात्रि में रात्रि के चार प्रहरों में चार बार पृथक-पृथक पूजा का विधान बताया गया है। प्रथम प्रहर में दुग्ध, द्वितीय प्रहर में दधि, तृतीय में घृत और चतुर्थ में मधु द्वारा सद्योजातक मूर्ति को स्नानक करा कर उसका पूजन कराया जाता है।

वैसे आमतौर पर शिवरात्रि के दिन श्रद्धालु व्रत उपवास रखते हैं, शिवलिंग के दर्शन करते हैं जल और बेलपत्र चढ़ाते हैं उनका अभिषेक करते हैं ऊ नमः शिवाय का जाप मंत्रोच्चार करते हैं। भगवान शिव के दर्शन पूजन अर्चन से सिद्ध लाभ संपन्नता और मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

-14, उर्दूपुरा,
उज्जैन-456001 (म.प्र.)

परिवार की सुख-समृद्धि का आधार है संस्कार

लाजपतराय जैन

मानव शरीर 600 खरब कोशिकाओं का समूह है। कोशिकाएं लाखों की संख्या में नित्य मरती रहती है, नई उत्पन्न होती रहती है। नई कोशिकाओं का निर्माण जीर्ण कोशिकाओं के विभाजन द्वारा होता है। प्रत्येक मानवीय कोशिका में ऐसे 46 गुणसूत्र होते हैं जो 23 माता से एवं 23 पिता से आते हैं। एक-एक गुण सूत्र में हजारों लाखों 'जीन' नामक सूक्ष्मतम जीवन तत्व होते हैं। एक-एक जीन में हजारों संदेश एकत्रित होते हैं। यही जीन आनुवांशिक गुण-दोष का संवाहक होता है इसलिए तो बच्चे की शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमता एवं विशेषताएं माता-पिता से प्राप्त होती हैं। इस कार्य का अधिनायक है डीएनए इसकी तुलना हम संस्कारों या कर्मसंस्कार से कर सकते हैं अर्थात माता-पिता के गुण-दोष, आदतें, स्वभाव या व्यवहार बच्चें में परिलक्षित होने का यही आधार है। कोशिका के बीच का भाग नाभिक कहलाता है जो नियंत्रण का कार्य करता है। इसके बिना कोशिका मर जाती है। जीन एवं क्रोमोसोम इसी भाग में है। अतः हम कह सकते हैं कि संस्कार मां के गर्भ के समय से ही प्रारंभ होकर बाल अवस्था में घर-परिवार में माता-पिता एवं अन्यों से प्रभावित होते हैं। हम कह सकते हैं कि घर-परिवार, संस्कारों की प्रथम पाठशाला हैं। शिक्षण काल में गुरुजनों से संस्कार प्राप्त होते हैं क्योंकि गुरु ही हमारा आदर्श होता है। शिक्षार्थी अपने गुरु जैसा बनने की आकांक्षा रखता है। युवावस्था में संतजन हमारा मार्गदर्शन करते हैं। हमारा आचरण एवं व्यवहार संतों के सान्निध्य में प्रभावित होता है। फिर भी मनुष्य की आदतें, स्वभाव एवं व्यवहार पारिवारिक अशांति का कारण बना हुआ है। इसका कारण है हमारे सुसंस्कार एवं आजकल के भौतिक युग

जनित समस्याएं। संस्कार हमारे औदारिक शरीर में तो है ही, हमारे तेजस शरीर एवं कर्म शरीर में भी रहते हैं, जैसे हमारे कर्म जन्म-जन्म तक साथ रहते हैं, उसी प्रकार से संस्कार प्राप्त होते हैं। एक-एक जीन में लाखों संदेश संग्रहित रहते हैं।

वर्तमान युग की स्थिति पर विचार करें तो पायेंगे कि संस्कार प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं। वर्तमान टीवी, इंटरनेट से बच्चों को संस्कार प्राप्त हो रहे हैं जो न जाने हमें कहां ले जायेंगे? आज हमारे संस्कार भी प्रोफेशनल हो गये हैं। हम सब कुछ लाभ-हानि के दृष्टिकोण से सोचने लगे हैं। समाज में मूल्यों का पतन हो रहा है। सब कुछ अंग्रेजी एवं डिब्बाबंद पैकेट वस्तु जैसे संस्कार हो गये हैं। इसीलिए असमानता, असंतुलन, हिंसा, भ्रष्टाचार पनप गया है। कुछ रोग तो सामान्य हो गए हैं। हिंसा और भ्रष्टाचार हमारे जीवन का अंग बन गए हैं। दैनिकचर्या में हम अपना कार्य किसी भी प्रकार से संपादित करना चाहते हैं और इसी वृत्ति से आगे समस्याएं पैदा होती रहती है।

संस्कृति के बीज की संरक्षक मातृत्व शक्ति है क्योंकि वह क्षेम को वहन करने वाली है जो अच्छे संस्कार संतान को दिये जाते हैं उनका वह संरक्षण भी करती है, संवर्धन भी करती है इसलिए तो हम कहते हैं कि माता-पिता का ऋण किसी भी कीमत पर चुकाया नहीं जा सकता। अगर हम अपनी चमड़ी से ढोल बनाकर पीटे तो भी माता-पिता का ऋण नहीं चुकाया जा सकता। मुझे राजस्थान के एक शहर में लिखित वाक्य का स्मरण हो रहा है जो बिल्कुल सटीक है-

जिस घर के बच्चे संस्कारी, वह नारी का अभारी।

-142, मॉडल टाउन, हांसी (हरियाणा)

संतोष

साध्वी राजीमती

मेरा परिवार–सुखी परिवार

हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, उसमें सभी लोग एक-दूसरे से अपेक्षा करते हैं कि वे शांत हों। सरसता भरे व्यवहार वाले हों, किन्तु सब शांत सरस नहीं होते। आश्चर्य तो इस बात का है कि हम स्वयं जैसा चाहते हैं वैसा नहीं जी पाते। बहुत बार हमारा मन छोटी बात को बड़ा बना लेता है, क्योंकि उसका मन पहले से अशांत होता है। अशांत मन परिपार्श्व में फैले अशांति के कीटाणुओं को जल्दी पकड़ता है। ये कीटाणु जितनी जल्दी अपनी हत्या करते हैं उतनी जल्दी औरों की नहीं करते।

पारिवारिक जीवन में कुछ मानवीय गुणों का होना बहुत जरूरी है, किन्तु उनका सामान्यतया अभाव पाया गया है। जिन परिवारों में ये गुण हैं वे स्वर्गीय सुखों का अनुभव करते हैं।

सरलता–पारस्परिक जीवन में वक्रता नहीं, सरलता होनी चाहिए। संबंधों में जब छुपाव जैसी वृत्ति पैदा हो जाती है, बहम पनपने लगते हैं तो आखिर एकदिन प्रतिक्रिया एवं प्रतिशोध के तीव्र भाव पैदा हो जाते हैं।

समता–परिवार आदमी का एक ईमानदार-नित्यमित्र है। वह जैसा सुख, समाधान और सुझाव देता है। वैसा सुख स्वर्ग के आस-पास भी नहीं मिलता। परिवार में प्रतिक्रिया के एवं प्रतिशोध के अवसर अधिक आते हैं। उस वातावरण में हम प्रतिक्रिया मुक्त कैसे रहें? जो इस बात को भली भांति समझ लेते हैं वे धन प्राप्ति ही नहीं, अपितु महाधन प्राप्ति की कला सीख लेते हैं, किन्तु देखा यह गया है कि परिवार के अधिकतर लोग यह सोचते रहते हैं कि धन का अधिक हिस्सा मुझे मिल जाए। मैं जैसा चाहूं वैसा कर सकूं। यह लोभ चेतना सबसे अधिक खतरनाक है। इसे बदल दिया जाए, इसी में सुख है।

समूह में सार्थक जीवन वही जी सकता है जो स्वयं के स्वार्थ को क्षीण कर देता है। किसी भी कार्य के साथ जुड़ी अपनी सफलता परिवार को समर्पित कर दी जाए। यह सफलता, यह सुलाभ और यह प्रसिद्धि मेरी नहीं, मेरे परिवार की है। मेरे पूर्वजों की है।

अपने द्वारा किसी अच्छे कार्य के होने पर ये तीन चिंतन काम में लिये जा सकते हैं- (1) मैं तो कार्य में मात्र निमित्त रहा हूं। निमित्त मैं ही नहीं, और भी अनेक निमित्त बने हैं। (2) परिवार में किसकी पुण्यवानी काम करती है, कौन जान सकता है। (3) मैं इन सभी सफलताओं से दूर हूं। मेरा अपना जगत शुद्ध चैतन्य से प्रकाशित है, वहां पुद्गल चेतना के लिए कोई अवकाश नहीं।

जो व्यक्ति दिन में तीन बार स्वयं को अध्यात्म के स्तर पर 'एगोऽहं' अनुभव करता है वह राग की ग्रंथि को इतनी जटिल नहीं बनाता जो अपने द्वारा सुलझाई नहीं जा सके। भाई-भाई में होने वाले मतभेद, धन का उन्माद और भौतिकता का स्वाद इसलिए बढ़ता जा रहा है कि व्यक्ति स्वयं को परिस्थिति से दूर खड़ा अनुभव नहीं करता।

सुझाव की भाषा

हमारी दुनिया में आदेश की भाषा अधिक चलती है। सुझाव से आदेश, कठोरता, कटुता, दमन तथा विरोध जैसा भाव कम झलकता है। विनम्रता, विवेक तथा बुद्धिमता का सुझाव देते हैं तो लेते समय वातावरण में मधुरता की गंध आने लगती है। जो किसी से खुश होने के लिए तैयार नहीं, वह भी आधार से चलता है, वैसा आचरण भी करने लगता है। इसलिए अहिंसक परिवार की रचना में सुझाव की भाषा अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। कठिनाई इस बात की है कि समाज में बड़प्पन का मापदण्ड आदेश की भाषा को मान लिया गया है अर्थात् बड़ा आदेश की भाषा में बोले–यह सर्वथा उचित मान लिया जाय। माता-पिता, पति, मालिक और गुरु जब-जब कठोर आदेश की भाषा में बोलते हैं तब प्रेम और मैत्री की धारा जो वाणी की गंगा के साथ बढ़ती हुई अपनी ओर आती है, वह बंद हो जाती है। उसका स्वभाव रुक जाता है। एक व्यक्ति बोलता है- तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए। तुमने बिना मतलब क्रोध क्यों किया? दूसरा व्यक्ति इसी बात को बोलता है, इस प्रसंग पर तुम शांत रहते तो कैसा रहता? यह तुम स्वयं सोचो। यदि सामने वाला समझदार है तो इशारा काफी है। इसके बावजूद वह नहीं मानता तो आपका क्या बिगड़ा? समय आने पर वह भी समझ जाएगा। नहीं तो नियति पर छोड़ा जा सकता है। जिन्हें शांत सहवास में निष्ठा है उन्हें देर-सबेर सुझाव की भाषा में बोलना, सीखना पड़ेगा ही।

काम और स्वास्थ्य

एक लेखक लिखता है, आपको शांति चाहिए तो निम्न गुणों का विकास करें। निश्चित संतोषजनक परिणाम आएगा:-

(1) आप पर्याप्त स्वस्थ हैं तो काम करते समय आपको आनंद आएगा। काम स्वयं आनंद बन जाएगा। अस्वस्थ शरीर एवं अस्वस्थ मन वाला व्यक्ति आपसे घबराता है, संकुचाता है, किन्तु काम स्वास्थ्य का आधार है। प्रेरणा काम की नहीं किन्तु स्वस्थ रहने की देनी चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति काम को कर्त्तव्य ही नहीं, उसे खेल मानता है। समय बिताने के लिए काम करना अनिवार्य है, इसलिए कार्य करना स्वस्थ मानसिकता की बात है। संयुक्त परिवारों में होने वाली टकराहट से बचने के लिए।

(2) पर्याप्त शक्ति हो ताकि मुसीबत को मिल-जुलकर सह सके।

(3) पर्याप्त शालीनता हो ताकि अपनी भूलों को स्वीकार कर सके।

(4) पर्याप्त उदारता हो ताकि दूसरों की भलाई दिख सके।

(5) पर्याप्त धन हो ताकि आवश्यकता की पूर्ति संभव बन सके।

सुविधा में संतोष

मनुष्य सब कुछ बाहर से पाना चाहता है–सुख, शांति, स्वास्थ्य और आनंद। वह इस बात को भूल गया है कि इन सबका मूल स्रोत हमारे भीतर तल में है। परिवार में सभी सदस्य जब सुविधाकांक्षी बन जाता हैं तब नेतृत्व शक्ति को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। एक साथ सबकी सभी इच्छाएं भरी नहीं जा सकती। इसी का परिणाम है समय से पूर्व परिवारों का विभक्त होना। अलग होने से पूर्व जो सपने संजोए जाते हैं, बहुत बार तो वे अधूरे ही रह जाते हैं, अन्य बड़ी कठिनाइयां और खड़ी हो जाती है। इसीलिए सुविधा जीवन की मांग नहीं होनी चाहिए। एक मांग दूसरी मांग का आमंत्रण है। इन्द्रियों की आतुरता जब बढ़ती है तब परिवार में एक-दूसरे के हित टकराने लगते हैं, इसलिए प्राप्त सुविधा में संतोष के संस्कार बचपन से दिया जाए। जिससे परिवार का संतुलन बनाए रखना है तो उसे इसी राह पर चलकर परिवार का हित साधन करना होगा। पदार्थ न सुख का होता है, न दुःख का होता है, इसके लिए जिम्मेदार है हमारी चेतना। चेतना में स्वार्थ, अहं, आवेग न जागे, इसके लिए अनुकूल घर का वातावरण बनाया जाए। ■

शास्त्र-ज्ञान

शबाना आज़मी

महावीर और गांधी की अहिंसा ही है शांति का मार्ग

महात्मा गांधी ने अहिंसा का पाठ पढ़ाया और स्वयं भी इसे जिया। उन्होंने इसे सामाजिक और राजनीतिक बदलाव के लिए युक्तियुक्त और प्रभावशाली साधन बनाया। उनके लिए अहिंसायुक्त कार्य का अर्थ था सच्चाई की खोज और विरोधियों को भी इस खोज में भागीदार बनने के लिए राजी करना। उन्होंने इसे सत्याग्रह कहा। एक तकनीक जो किसी रणनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि एक कल्याणकारी उद्देश्य के लिए थी। यह विरोधियों को भी एक समान लक्ष्य के लिए साथ काम करने की समझाइश या प्रयास था। उनकी शक्ति अपने विरोधियों से उनके नजरिए का विरोध करते हुए उनसे प्रेम करने की क्षमता में थी।

लेकिन यह भी सच है कि वे प्राणघातक गोली के आगे पराजित हो गए। इसे विडम्बना ही कहेंगे कि हिंसा ने उनकी मृत्यु के साथ ही अहिंसा का दु:खद अंत कर दिया। इस बात को लगातार उपेक्षा और उपहास हासिल हुआ है। यह भी एक भावशून्य तथ्य है कि उनका जन्मस्थल गुजरात वर्ष 2000 में सबसे बदतर साम्प्रदायिक हिंसा का गवाह बना।

अहिंसा को सफल होने के लिए अपने अंत से वापस शुरुआत करनी होगी। एक बार नहीं बल्कि बार-बार। जितनी महत्वपूर्ण यह वर्तमान में है, इतनी महत्वपूर्ण इससे पहले कभी नहीं रही।

सभ्यताओं के टकराव का सिद्धांत अब भी जारी है, इस्लामिक विश्व बनाम ईसाई विश्व। आतंकवाद को इस्लाम के बराबर माना जाता है। इस्लाम सीमित नहीं है। यह 53 से ज्यादा देशों के भीतर निवास करता है और जिस भी देश में रहता है, वहां की संस्कृति को ग्रहण कर लेता है। इसलिए कुछ में यह सहिष्णु है, कुछ में उदार और अन्य में अतिवादी। आज की लड़ाई ईसाई और मुसलमानों या हिन्दू और मुसलमानों में नहीं हो सकती। अब जरूरत है विचारधाराओं की लड़ाई की–उदारवादियों बनाम अतिवादियों की लड़ाई। जिसमें एक तरफ उदारवादी मुस्लिम, ईसाई और हिन्दू हों, दूसरी ओर अतिवादी मुस्लिम, ईसाई और हिन्दू।

एक समानता को एकता के रूप में नहीं देखा जा सकता। केवल वास्तविक अनेकवाद एकता को प्रोत्साहित कर सकता है। मतभेदों का आनंद उठाना चाहिए न कि उनका उपहास किया जाना चाहिए। विभिन्न भूमिकाओं के बीच पहचान की संपूर्ण धारणा क्या है? यह प्रश्न उठना चाहिए। पहचान कोई स्थायी चट्टान नहीं है, यह एक बहती नदी के समान है। अगर आप मुझसे पूछेंगे कि मैं कौन हूं, तो मेरा जवाब होगा, मैं एक महिला हूं, एक भारतीय, एक अभिनेत्री, एक पत्नी, एक पुत्री, एक मुस्लिम, एक समाजसेवी और इसी प्रकार बहुत कुछ हूं।

मेरा मुस्लिम होना मेरी पहचान का केवल एक पक्ष है। दुर्भाग्यवश मेरी पहचान को जिस धर्म में मैं पैदा हुई हूं, उसकी संकरी कैद में सीमित किए जाने का संयुक्त प्रयास किया जा रहा है। यह मुझे असहज और क्रोधी बना देता है और सभ्य दुनिया को ऐसा परिवेश बनाना चाहिए जहां गुस्से के लिए जगह न हो।

सबसे अत्यधिक विनाशकारी हिंसा तीन कारणों से उत्पन्न होती है। यौन, आर्थिक और दबदबा कायम करने की इच्छा। पहला यौन हिंसा पूरी दुनिया में हुए 48 जनसंख्या शोधों में 10 से 69 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि किसी न किसी पुरुष ने उनके साथ कभी न कभी शारीरिक दुर्व्यवहार किया है। 50 से 70 प्रतिशत महिलाओं की हत्या का अपराधी उनका वर्तमान या पूर्व घनिष्ठ पुरुष साथी था।

हिंसा भड़काने वाला दूसरा कारक आर्थिक जरूरत है जो कि लालच की वजह से हिंसा से जुड़ता है। डब्ल्यूएचओ शोध बताता है कि हिंसा के कारण हर वर्ष मरने वाले 1.6 मिलियन लोगों में से 90 प्रतिशत लोग निम्न और मध्यम आय वाले देशों के निवासी होते हैं। ज्यादातर देशों द्व ारा अनुसरण किया जा रहा डेवलेपमेंट मॉडल, अंतत: गरीबों के जीवन को बदतर बनाते हुए उनकी नींवें हिला रहा है। किसका विकास और किसकी कीमत पर? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसे उठाया जाना चाहिए–जिसका जवाब कई लोगों की कीमत पर कुछ लोगों की प्रगति कभी नहीं हो सकता। तीसरा कारण है, आर्थिक, सैन्य और वैचारिक कारणों पर प्रभुत्व का दावा करना। वर्ष 2000 में युद्ध में हुई क्षति के कारण 3,10,000 लोग मारे गये। हाल ही में हुए एक अध्ययन के अनुसार इराक में हुए युद्ध में 6,50,000 से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं।

इसका कोई इलाज नहीं है, सिवाय इसके कि गौतम बुद्ध, भगवान महावीर और महात्मा गांधी द्वारा सिखाये गये मार्ग का अनुसरण किया जाए–सामाजिक न्याय, उदारता और शांति का मार्ग।

–लेखिका सुप्रसिद्ध अभिनेत्री
और समाजसेविका हैं

ताली से करें रोगों को काबू

कुसुम शर्मा

कभी आपने सोचा है, ऐसा क्यों होता है कि भजन, आरती या फिर खुशी ज़ाहिर करने के लिए ताली ही बजाई जाती है? ऐसा इसलिए, क्योंकि इनमें छिपे हैं कुछ राज़ सेहत से जुड़े भी।

सदियों से हमारी परम्परा रही है कि कोई भी भजन या आरती गाते समय अनायास हमारे हाथ तालियां बजाने लगते हैं और हम तल्लीन होकर ईश्वर का ध्यान करने लगते हैं। ठीक उसी तरह कभी हम कोई दृश्य देखकर बहुत खुश होते हैं और तालियां बजाने लगते हैं।

अपनी हैरानी व जिज्ञासा शांत करने के लिए इस विषय पर डॉ. लेले से चर्चा की थी। वे इस क्रिया को अपनाकर 19 वर्षों से खुद भी किसी भी रोग से ग्रस्त नहीं है।

डॉ. लेले के अनुसार आरती या भजन गाते वक्त ताली बजाने की प्रथा का वैज्ञानिक महत्व भी है। शरीर व स्वास्थ्य की दृष्टि से यह क्रिया बेहद लाभदायक है। ताली विश्व भर में सबसे सरल प्रक्रिया उपयोगी (सहज योग) है। यदि प्रतिदिन नियमित रूप से कम-से-कम एक या दो मिनट भी तालियां बजाई जाए तो फिर किसी भी हठयोग या आसन की ज़रूरत नहीं रहेगी। लगातार ताली बजाने से हमारे शरीर में विद्यमान श्वेत कणों को शक्ति मिलती है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी रोग प्रतिरोधक शक्ति भी बढ़ती है।

स्वास्थ्य

बेला गर्ग

आहार से जुड़े नुस्खे

● रात में सोने से पूर्व व प्रात:काल उठकर शौच करने के बाद ब्रश, दातुन अवश्य करें। कुछ भी खाने के बाद कुल्ला (नमक के पानी से) अवश्य करें।

● भोजन हमेशा तभी करें जब बहुत तेज भूख लगी हो। भूख से थोड़ा कम ही खाएं। भोजन सात्विक शुद्ध पदार्थों से ही निर्मित करें।

● अधिक तीखा, खट्टा, मसालेदार, चिकनाई युक्त भोजन स्वास्थ्य का शत्रु है।

● भोजन में सलाद, कच्ची व हरी सब्जियां, दूध-दही, फल सभी वस्तुओं को थोड़ा-थोड़ा शामिल करें।

● आहार को अधिक पीसने, तलने, भूनने से उसके स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं। दाल, शाक, फल छिलके सहित खाएं।

● अंकुरित दालें, चना, गेहूं में थोड़ा सा नींबू, टमाटर, हरी मिर्च बहुत हल्का नमक मिलाकर खाएं तो स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा रहता है। मांसपेशियां पुष्ट होती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

● सप्ताह में एक दिन उपवास रखें। उपवास वाले दिन नींबू, छाछ, दूध, फल, सलाद आदि ही लें। गरिष्ठ भोजन या नित्य-प्रति लिया जाने वाला भोजन दिन में एक बार भी न करें। पानी खूब पीएं।

● भोजन करते समय व भोजन से आधा घंटा पूर्व तथा एक घंटे बाद तक जल न पीएं। पीना भी पड़े तो एक-दो घूट ही पीएं।

● प्रात:काल भारी नाश्ता वे ही लें जिन्हें दिन भर कठोर शारीरिक श्रम करना है।

● चॉकलेट, टॉफी, आइसक्रीम, च्युंगम, बबलगम जैसी वस्तुएं दांतों को गला देती हैं। इनका सेवन न स्वयं करें, न बच्चों को करने दें।

● कभी भी भोजन करने के फौरन बाद स्नान न करें। भोजन के तीन घंटे बाद ही स्नान करें।

शास्त्रोक्ति

वेदों से संपूर्ण यज्ञकर्म श्रेष्ठ है, यज्ञों से जप, जप से ज्ञान-मार्ग और उससे आसक्ति एवं राग से रहित ध्यान श्रेष्ठ है। ऐसे ध्यान के प्राप्त हो जाने पर सनातन ब्रह्म की उपलब्धि हो जाती है।

–मार्कण्डेयपुराण (41/25)

सकारात्मक सोच और अध्यात्म

ई. श्रीधरन

जीवनशैली और कार्यप्रणाली में समन्वय से आप तनावरहित स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। सकारात्मक सोच और अध्यात्म में रुचि के कारण मुझे अपनी जीवनशैली को नियंत्रित करने में काफी मदद मिली है। जीवन में सत्य, निष्ठा की भी बड़ी भूमिका होती है। इससे मन में भय नहीं रहता और जब भय नहीं होता है तो आप तनाव-मुक्त रहते हैं।

तनावरहित जीवन मनुष्य को अनेक रोगों से बचाता है अगर हम तनाव पर काबू नहीं कर पाते तो तनाव हमें काबू कर लेता है। काम को बांटकर करने से भी तनाव नहीं रहता। टीम वर्क से सद्भाव बढ़ता है। मैं इसमें भी विश्वास करता हूं कि दफ्तर के काम वहीं कर लेने चाहिए।

जहां तक मेरी बात है, मैं अपने समय का दुरुपयोग नहीं करता। मेरी कोशिश होती है कि मेरा प्रत्येक कार्य समय के अनुसार हो। मेरी दिनचर्या सुबह साढ़े चार बजे उठने से शुरू हो जाती है। साढ़े पांच से सवा छह बजे तक मैं पूजा और प्राणायाम करता हूं। चाय और सुबह का अखबार मैं सवा छह से सात बजे तक पढ़ता हूं। नहाने और योगासन का समय साढ़े सात से आठ बजे तक है। साढ़े आठ बजे मैं घर से कार्यालय के लिए निकल जाता हूं और शाम छह बजे मैं ऑफिस से घर के लिए निकल पड़ता हूं। साढ़े छह बजे मैं घर पर होता हूं। मैं पत्नी के साथ शाम सात से साढ़े सात बजे तक घूमने जाता हूं। आठ बजे रात्रि स्नान के पश्चात मैं सवा आठ बजे तक पूजा और प्राणायाम करता हूं। रात का खाना मैं साढ़े आठ बजे खा लेता हूं। नौ बजे मैं अध्यात्म से संबंधित पुस्तकें पढ़ता हूं। रात साढ़े नौ बजे मेरे सोने का समय है।

इसके अलावा मेरा मानना है कि हम अपने आचार-विचार में थोड़ी-सी आध्यात्मिकता को भी ले आएं तो जीवन सहज और तनावरहित हो सकता है। मैं भगवद् गीता पढ़ता हूं जो मुझे सकारात्मक जीवनशैली को बनाए रखने में मेरी मदद करती है।

-दिल्ली मेट्रो रेल निगम के प्रबंध निदेशक

मंत्र क्या है?

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर एक आभामंडल होता है, एक वलय होता है। अच्छे विचारों से अच्छा एवं बुरे विचारों से बुरा आभामंडल बनता है। मंत्रशक्ति के उपयोग से, शब्दों की संयोजना से ऊर्जा का आभामंडल बनाया जा सकता है। इससे निर्मित होनेवाला ऊर्जा का आभावलय इतना शक्तिशाली और प्रतिरोधात्मक बनेगा कि कोई भी बाहरी शक्ति आक्रमण नहीं कर पाएगी।

विचार, कर्म, भाषा और शब्द की तरंगें पूरे आकाश में व्याप्त है। यह सारा जगत तरंगों से आंदोलित है।

संसार में होने वाले प्रकम्पनों से बचने के लिए, उनके प्रभावों को कम करने के लिए व्यक्ति प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करे।

- **मंत्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति है।**
- **मंत्र एक कवच है।**
- **मंत्र एक प्रकार की चिकित्सा है।**

उत्साह बनाए रखें

जोगिन्दर सिंह

प्रोत्साहन किसी भी क्रिया का मूलतत्व है। यह वह चीज है, जिसकी जरूरत आपको हर जगह, समय एवं परिस्थिति में होती है। यह किसी परेशानी से मुक्ति एवं श्रेष्ठ परिणाम पाने का प्रभावी रवैया है। हमें जीवन की योजना इस तरह से बनानी चाहिए कि हम खुद के श्रेष्ठ प्रोत्साहक बनें। यह एक खुद को प्रोत्साहित करने का जागरूक रवैया है।

आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान की कमी का सामना करने के लिए इस दिशा में छोटा ही सही, प्रयास करना अच्छी शुरुआत है। यह सफलता का आदर्श फूल है। इसे करने का कोई अच्छा समय नहीं है, इसलिए आप जहां भी हो, अभी से एवं ठीक इसी दिशा में काम करें। बहुत से लोग यह सवाल पूछते हैं कि खुद को कैसे प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए आपको मूलाधार एवं प्रतिफल को अपने दिमाग में बैठाना होगा। आप खुद को पुरस्कृत करने का एक तरीका अपना सकते हैं। आप कुछ लक्ष्य बनाइए और इसे हासिल करने के लिए मेहनत कीजिए।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि उत्साह के स्तर को बनाए रखना मुश्किल हो सकता है, पर इसके बिना कोई भी सफलता नहीं पायी जा सकती। जो विकास आपने किया है, उसे पहचानें एवं उसे सकारात्मक सोच एवं क्रियाकलाप में अपनी आदत बनाएं। अपने लक्ष्य के प्रति हमेशा समर्पित रहें। समर्पण वह कुंजी है जो सफलता के सारे द्वार खोल देगी।

समर्थन का अर्थ है कि आपने सफलता का जो क्षेत्र चुना है और जो भी आप पाना चाहते हैं, उसमें जोश के साथ लगे रहें। समर्थन खुद एवं संस्था के लिए ऐसी चीज है जो बेहतरीन कर्मचारी को मिल में काम कर रहे कर्मचारी से अलग करता है। समर्थन छोड़ने को नहीं कहता। यह खड़ा होता है रुकावट का सामना करने के लिए।

किनारों पर बैठे लोग समर्पित कर्मचारी या समर्पित मजदूर और यहां तक कि समर्पित बॉस नहीं हो सकते। समर्पण का अर्थ छोड़ना नहीं है। इसका अर्थ है सभी संभावनाओं एवं स्रोतों का प्रयोग अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करना। समर्पण का अर्थ यह नहीं कि आप सब कुछ खुद करें, बल्कि यह काम किसी और से भी करवा सकते हैं। किसी खास क्षेत्र का विशेषज्ञ उस काम को अच्छा करता है।

-लेखक सीबीआई के पूर्व निदेशक हैं

ललन कुमार प्रसाद

चमत्कारिक औषधि है शंख

हम सभी शंख से भली-भांति परिचित हैं, क्योंकि मंदिरों एवं घरों में पूजा और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों तथा मांगलिक कार्यों में 'शंख-ध्वनि' या 'शंखनाद' का प्रचलन बहुत प्राचीन है। मंदिरों और घरों में हर रोज सुबह-शाम आरती के समय 'शंखनाद' अवश्य किया जाता है। बात यह है कि हिन्दू धर्मावलम्बी शंख को पवित्र मानते हैं। वे शंख की पूजा भी करते हैं। विवाह, युद्ध एवं पुण्यकर्मों की शुरुआत में शंख-ध्वनि को पवित्र माना गया है। कुछ जातियों में शंख को 'सौभाग्य सूचक' माना गया है। ज्योतिषी भी 'चंद्रदोष' दूर करने के लिए मोती उपलब्ध न होने पर उनके स्थान पर शंख की अंगूठी या शंख की माला पहनने का परामर्श देते हैं।

शंख क्या है?

यह समुद्र में बिना रीढ़ के पाये जानेवाले 'मोलास्का' या घोंघा वर्ग के जलजीव की एक प्रजाति का खोल मात्र है जो अत्यंत कठोर होता है। वैज्ञानिक इसे 'कॉक-शेल' कहते हैं। दरअसल 'मोलास्का वर्ग' के जलजीव बिना रीढ़ के कोमल एवं हड्डीरहित होते हैं। इसीलिए कुदरत ने इनके शरीर को कठोर खोल प्रदान की है।

अब तक 'मोलास्का वर्ग' के 60,000 से भी अधिक प्रजातियों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा चुकी है।

सृष्टि के नियमानुसार शंख भी 'नर' और 'मादा' होते हैं। इनमें 'नर' को 'शंख' और 'मादा' को 'शंखिनी' कहा जाता है। मादा शंख की तुलना में नर शंख की परत अधिक मोटी होती है और मादा शंख की तुलना में नर शंख अधिक मोटा भी होता है।

शंख बनते कैसे हैं?

शंख की सृष्टि (रचना) सीपी, घोंघे आदि की तरह पानी में होती है। दरअसल होता यह है कि आरंभ से ही घोंघा वर्ग के इस जलजीव के शरीर से एक प्रकार का 'स्राव' निकलना प्रारंभ हो जाता है, जो कि उसी जीव के शरीर के चारों ओर जमता चला जाता है और वातावरण के प्रभाव से अंततः हड्डी की तरह कठोर हो जाता है। घोंघा वर्ग के जीव के शरीर के अनुसार ही शंख रूपी कठोर खोल के अंदर खांचे भी बनते चले जाते हैं। इन खांचों के आधार पर ही शंख दो प्रकार के होते हैं–दक्षिणावर्ती शंख और वामावर्ती शंख। दक्षिणावर्ती शंख का पेट दक्षिण की ओर खुलता है। ये बजाने के काम नहीं आते, क्योंकि इनका मुंह बंद होता है। वामावर्ती शंख का पेट बायीं ओर खुला होता है, इनमें बजाने के लिए छिद्र होता है।

शंख की संरचना

इसमें मुख्यतः तीन परतें होती हैं। बाहरी परत सीपी-जैसे किसी पदार्थ की हलकी-सी परत से ढकी होती है। इसमें चूना बिलकुल नहीं होता। बीच की परत चूने के 'कार्बोनेट' की परत होती है। भीतरी परत में कई हलकी-हलकी परतों का समूह होता है, जिसमें बारी-बारी से एक के बाद एक सीपी-जैसे पदार्थ और चूने के 'कार्बोनेट' की परतें जुड़ी होती हैं। इसलिए शंख के अंदर का अस्तर मोती-जैसा किन्तु गुलाबी रंग का होता है। शंख में कान लगाकर सुनने पर समुद्र के लहरों-जैसी गंभीर गर्जना सुनायी पड़ती है। शंख ऊपर से चिकने किन्तु कठोर होते हैं। ये धब्बेदार और हलकी लाइनोंवाले भी होते हैं।

शंख के औषधीय उपयोग

आयुर्वेदानुसार शंख औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। यही कारण है कि शंख को औषधि की तरह कई रूपों में प्रयुक्त किया जाता है, जैसे-शंख भस्म, शंख चूर्ण, शंख वटी, शंख द्रव इत्यादि जो कई तरह की बीमारियों और विकारों के उपचार में रामबाण का कार्य करती हैं लेकिन इनमें सर्वाधिक प्रमुख है शंख भस्म।

शंख भस्म तैयार करने की विधि

शंख के स्वच्छ टुकड़ों को कोयले की तेज आग पर अच्छी तरह पकाया जाता है। पकाने के बाद ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। ठंडा हो जाने पर नींबू के रस से बुझाया जाता है। नींबू का रस आग में पकाये गये शंख के टुकड़ों पर डालते ही वे भरभराकर चूर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। अंत में खरल में पीसकर इसे खूब महीन कर लिया जाता है और बोतलों में रखकर उनके मुंह को बंद करके उपयोग हेतु भंडारित कर दिया जाता है।

शंख भस्म : उत्तम दवा

शंख भस्म के सेवन से अमाशय से संबंधित तमाम तरह के विकार और पेट में होनेवाली तीव्र पीड़ा, गुल्म (त्वचा का फैलाव), पित्त, कफ, खून आदि के विकार नष्ट हो जाते हैं।

उदर रोग

500 मिलीग्राम (0.5 ग्राम) लवण भास्कर चूर्ण में 100 मिलीग्राम (0.1 ग्राम) शंख भस्म मिलाकर पानी या मट्ठे के साथ सेवन करने से अफरा और पेट में होनेवाले तीव्र दर्द से तुरंत मुक्ति मिल जाती है।

अम्लपित्त (एसीडिटी), अपच, खट्टी डकारें, पेट में भारीपन और गले की दाह (जलन) की शिकायत होने पर शंख भस्म में जरा-सा नौसादर मिलाकर भोजन के बाद घी या नींबू के रस के साथ सेवन करने से मरीजों को बहुत लाभ होता है।

प्रदर (ल्यूकोरिया)

प्रदर रोग में महिलाओं को 120 मिलीग्राम शंख भस्म और इतना ही अकीक भस्म को मिलाकर चावल के पानी (चावल के धोवन) के साथ

सुबह-शाम सेवन करने से मुक्ति मिल जाती है। साथ ही हाथ-पैरों की जलन और दर्द दूर हो जाता है। प्रात: शंख-भस्म युक्त ताजे जल से नित्य योनि का प्रक्षालन करने से श्वेत प्रदर से मुक्ति मिल जाती है।

मिरगी (एपिलेप्सि)

पान के साथ शंख-भस्म का सेवन मिरगी के रोगियों के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

हैजा

हैजे की तीव्रावस्था में पानी में थोड़ा-सा शंख भस्म मिलाकर थोड़ा-थोड़ा किन्तु थोड़े अंतराल पर बार-बार पिलाने से मरीज स्वस्थ हो जाता है।

मासिक धर्म

समान मात्रा में हल्दी और गुड़ लें तथा उसमें थोड़ी मात्रा में शंख भस्म मिलाकर छोटी-छोटी गोलियां बना लें। मासिक धर्म के दौरान तीव्र पीड़ा (दर्द) की शिकायत से परेशान महिलाओं को नियमित रूप से कुछ सप्ताह तक सुबह-शाम एक-एक गोली खिलाने से उन्हें बहुत लाभ होता है।

खूनी बवासीर

दस ग्राम घी में शंख भस्म और पिसे हुए काले तिल का चूर्ण मिलाकर नित्य दिन भर में एक बार सेवन करने से खूनी बवासीर में अप्रत्याशित लाभ पहुंचता है।

हिचकी

बार-बार या काफी देर तक हिचकी आते रहने पर एक-दो बार एक-एक चुटकी शंख भस्म पानी के साथ सेवन करने पर हिचकी का आना बंद हो जाता है। साथ ही मरीज को सोंठ का चूर्ण भी सूंघते रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से शंख भस्म अधिक असरदार हो जाता है।

मुंहासे

मुंहासे होने पर शंख भस्म का सेवन एवं बाहरी प्रयोग दोनों ही उत्तम माने गये हैं। शंख भस्म के सेवन के साथ उबटन में शंख भस्म मिलाकर लगाने से शीघ्र ही आशातीत लाभ पहुंचता है। शंख को घिसकर चेहरे पर लगाने से भी मुंहासे दूर हो जाते हैं और चेहरे की कांति बढ़ जाती है।

शंख-जल भी उत्तम औषधि है

शंख में रखे जल में कीटनाशक क्षमता आ जाती है। यही कारण है कि चौबीस घंटे तक शंख में रखे जल को पीने तथा उससे शरीर को धोने से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। रातभर शंख में रखे जल का प्रतिदिन सेवन करने से अनेक रोगों से मुक्ति पाने में मदद मिलती है। शंख जल का सेवन करने से शीत पित्त, रक्ताल्पता (खून की कमी), श्वेत प्रदर आदि बीमारियों में बहुत लाभ होता है।

शंख का उपयोग शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों ही प्रकार की उन्नति एवं पर्यावरण शुद्धि के लिए उत्तम होता है। इसलिए सभी लोगों को हर रोज नियमित रूप से सुबह-शाम 'शंखनाद' करके तथा 'शंखनाद' सुनकर समुचित लाभ अवश्य उठाना चाहिए।

–रसायनशास्त्री
प्राचीन भारतीय इतिहास
और पुरातत्व विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

मां सरस्वती की महिमा

मुरली कांठेड़

माघ शुक्ला पंचमी से बसंतोत्सव प्रारंभ हुआ। बसंत पंचमी को विद्या की अधिष्ठायक देवी मां सरस्वती का दिन भी माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने जीवन में कोई न कोई 'इष्ट' तत्व होता है। वह जिस 'इष्ट' की उपासना करता है जिस भाव से करता है, उस भाव से 'इष्ट' का वह तत्व व्यक्ति में संक्रांत होता है, विनियोग पाता है। उपासना शक्ति से उपास्य शक्ति अधिक सक्रिय होती है। वह लंबे समय तक स्थायित्व लिए हुए होती है। उपासना सदैव लाभदायिनी बनी रहती है।

माना जाता है कि महाकवियों सिद्धसेन दिवाकरजी, कालिकाल मर्मज्ञ सर्वज्ञ सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचंद्राचार्यजी, कवि कालिदास आदि को अभेद प्राणिधान सिद्ध हुआ होगा, इसीलिए मां सरस्वती की उन पर अटूट कृपा रही है। मां सरस्वती की आराधना के अनेक मंत्र प्रचलित है। उनमें ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै नम:, ऊँ ऐं नम:, ऊँ ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नम: प्रमुख मंत्र है।

- जो साधक काश्मीर देश कि निवासिनी माँ शारदा देवी की मन से आराधना करता है उसे विद्या की प्राप्ति होती है।
- कमल समान नयनोवाली, वीणा एवं पुस्तक

को धारण करनेवाली एवं हंस वाहन पर आरूढ़ माँ सरस्वती की आराधना कष्टों को हरती है।

- माँ सरस्वती की कृपा से लोग काव्यों की रचना करते हैं। अत: निश्चल श्रद्धा से सरस्वती पूजनीय है।
- माँ सरस्वती का प्रथम नाम 'भारती', द्वितीय 'सरस्वती', तृतीय 'शारदादेवी' एवं चतुर्थ नामं हंसवाहिनीं है।
- पांचवां नाम विद्वानों की माता, छठा 'वागीश्वरी', सांतवां 'कौमारी' एवं आठवां नाम 'ब्रह्मचारिणी' है।
- नौंवा नाम 'त्रिपुरादेवी', दसवां 'ब्राह्माणी', ग्यारहवां 'ब्रह्माणी' एवं बारहवां नाम 'ब्रह्मवादिनी' है।
- तेरहवां नाम 'वाणी', चौदहवां 'भाषा', पन्द्रहवां 'श्रुतदेवी' एवं सोलहवां नाम 'गौरी' कहा गया है।

जो मनुष्य प्रात: उठकर इन पवित्र नामों का पाठ करता है उस पर वरदायिनी शारदादेवी प्रसन्न होती है।

जो देवी कुंद पुष्प, चंद्र, बर्फ और मोती के हार के समान उज्ज्वल है, श्वेत कमल पर विराजमान है, उत्तम वीणा के दण्ड से विभूषित हाथवाली है, शुभ वस्त्रों से समावृत्त है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों द्वारा सदैव नमस्कृत है, वह संपूर्ण जड़ता को दूर कर समस्त मानवजाति की रक्षा करती है।

संसार में जब तक सूर्य-चंद्र है, जब तक मेरू पर्वत है, जब तक नौ ग्रह-नक्षत्र-महासागर और आठ वसु है तब तक मां सरस्वती की आराधना करने वालों की सदैव रक्षा होती रहेगी।

-ए-56/ए, प्रथम तल,
लाजपत नगर
नई दिल्ली-110024

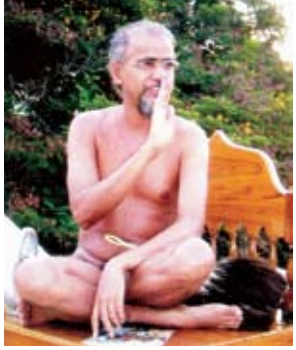

प्रभाव

मुनिश्री तरुणसागरजी

कटु सत्य के इर्द-गिर्द जीवन

■ धर्म के दुश्मन नास्तिक नहीं बल्कि तथाकथित धर्म के ठेकेदार हैं। ईश्वर को जितना बदनाम इन तथाकथित ठेकेदारों ने किया है, उतना नास्तिकों ने नहीं। वैसे भी हीरे के दुश्मन कंकर-पत्थर कहां होते हैं? नकली हीरे होते हैं। यह सच है कि आज खजाने को चोरों से नहीं, पहरेदारों से खतरा है, देश को दुश्मनों से नहीं, गद्दारों से खतरा है और धर्म को दुश्मनों से नहीं, ठेकेदारों से खतरा है। वे लोग जो धर्म की आड़ में अपना उल्लू सीधा करते हैं, धर्म के असली-दुश्मन हैं।

■ आलू-बड़ा, मिर्ची-बड़ा, दही-बड़ा के अलावा आज एक और बड़ा का नाम समाज में आया है और वह है–मैं बड़ा। गृहस्थ कहता मैं बड़ा। साधु कहता है मैं बड़ा। मेरा कहना है कि न गृहस्थ बड़ा है और न साधु बड़ा है बल्कि जो इस 'मैं बड़ा' के लफड़े से दूर खड़ा है, वही बड़ा है। गृहस्थ और साधु दोनों अधूरे हैं क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। 23 घंटे गृहस्थ को साधु की जरूरत पड़ती है तो 1 घंटे साधु को भी (आहार के समय) गृहस्थ की जरूरत पड़ती है। श्रावक और मुनि धर्म-रथ के दो पहिए हैं और कोई भी रथ एक पहिए से नहीं चलता।

■ सद्गृहस्थ का शाश्वत्-धर्म यही है कि यदि संत-मुनि तुम्हारे घर-नगर आ रहे हैं तो उनकी अगवानी करो, उनका स्वागत और अभिनंदन करो। यदि संत-मुनि तुम्हारे घर-नगर में ठहरते हैं तो उनके प्रवास की समुचित व्यवस्था करो और यदि संत-मुनि तुम्हारे नगर से विहार कर रहे हैं तो उन्हें रोको मत, सहज व प्रसन्न मन से विदा करो क्योंकि वे तुम्हारे ही किसी भाई के कल्याण और मुक्ति के लिए जा रहे हैं। सद्गुरु एक दीप है। दीप का काम दीयों की बाती को प्रज्ज्वलित करना, उन्हें जगाना और आगे बढ़ जाना है।

■ बीड़ी और सिगरेट तो केवल मानव के लिए जहर है लेकिन शराब तो पूरी मानवता के लिए जहर है। नदी, तालाब और समुद्रों में डूबकर अब तक जितने लोग नहीं मरे होंगे उससे भी कहीं अधिक लोग शराब के छोटे से प्याले में डूबकर मर चुके हैं। इस अंगूर की बेटी ने पता नहीं कितनी मां के बेटों का बेड़ा-गर्क कर रखा है। दुनिया में अगर शराब नाम की चीज न होती तो दुनिया का नक्शा ही कुछ और होता। इन नशे ने व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और दुनिया की दशा और दिशा दोनों बिगाड़ रखी है। शराब पिये तो यह सोचकर पिये कि अब मैं आत्म-हत्या कर रहा हूं।

■ हिन्दू और मुसलमान इस देश की दो आंखें हैं और ये दोनों कौमें खूब प्यार और मुहब्बत के साथ सदियों से कंधे से कंधा और कदम मिलाकर रहती आ रही हैं। साम्प्रदायिकता इस देश के मिजाज में नहीं है। और हो भी कैसे? जरा गौर फरमाइए कि जब आप रमजान लिखते हैं तो राम से शुरुआत करते हैं और जब आप दिवाली लिखते हैं तो अली से समाप्त करते हैं। यों रमजान में बसे राम और दिवाली में छिपे अली हमें मुहब्बत से रहने का पैगाम देते हैं। अगर राम के भक्त और रहीम के बंदे थोड़ी अक्ल से काम लें तो यह मुल्क स्वर्ग से भी सुंदर है।

■ श्मशान गांव के बाहर नहीं बल्कि शहर के बीच चौराहे पर होना चाहिए। श्मशान उस जगह होना चाहिए जहां से आदमी दिन में दस बार गुजरता है। ताकि जब-जब वह वहां से गुजरे तो वहां जलती लाशों और अधजले मुर्दों को देखकर उसे भी अपनी मृत्यु का ख्याल आ जावे और अगर ऐसा हुआ तो दुनिया के 80 फीसदी पाप और अपराध स्वत: खत्म हो जायेंगे। आज का आदमी भूल गया है कि कल उसे मर जाना है। तुम कहते जरूर हो कि एक दिन सभी को मर जाना है। पर उन मरने वालों में तुम अपने को कहां गिनते हो?

लोकज्ञान

पं. गोपाल शर्मा

स्वस्थ एवं सुखी जीवन के टोटके और उपाय

शरीर की प्रत्येक कोशिका में संपूर्ण ब्रह्मांड अपने सभी गुणों के साथ निहित है। बस कमी है तो उसे पहचानने की। अज्ञानतावश हम अपने शरीर के महत्व को समझ नहीं पाते, जिस कारण इसका निरादर करते हैं और जीवन को सारहीन और निरर्थक बना देते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मानव जीवन बहुत मुश्किल से मिलता है और यह जन्म ऐसा है जिसमें व्यक्ति अपने सत्कर्मों द्वारा अपने आगामी भविष्य को सुधार सकता है और मोक्ष की राह में बढ़ सकता है। हम केवल उन बातों का यहां संक्षेप में विवेचन कर रहे हैं जिन्हें प्रयोग कर प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है।

● बेहतर स्वास्थ्य के लिए

सुबह सबेरे उठना और लगभग पंद्रह मिनट शुद्ध वायु में गहरी श्वास लेते हुए टहलाना स्वास्थ्य

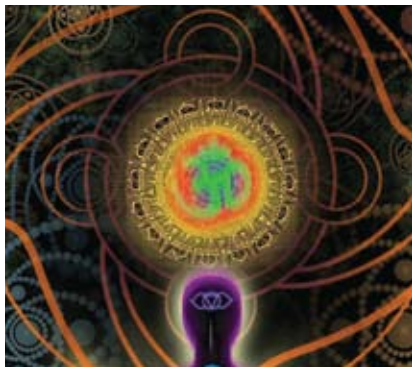

के लिए अति लाभदायक होता है। गहरी श्वास का अर्थ है- नाभि तक सांस लेना। फेफड़ों में शुद्ध वायु के प्रवेश से दमा, एलर्जी, सांस के समस्त रोगों में बहुत लाभ होता है। कहते हैं, सुबह जीत ली तो सारा दिन ही जीत लिया।

● भाग्य जगाने के लिए

उत्तर अथवा पूर्व में बड़ा खुला स्थान, नाम, धन और प्रसिद्धि प्राप्त करने का माध्यम बनता है। अपने मकान, फार्म हाउस, कॉलोनी के पार्क, फैक्टरी के उत्तर-पूर्व, पूर्व या उत्तरी भाग में शांत भाव से बैठना, नंगे पैर धीमे-धीमे टहलना सोया भाग्य जगा देता है।

दक्षिण-पश्चिम में अधिक खुला स्थान घर के पुरुष सदस्यों के लिए अशुभ होता है, उद्योग-धंधों में यह वित्तीय हानि और भागीदारों में झगड़े का कारण बनता है।

● व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए

घर के दरवाजे से उसी पैर को पहले बाहर रखें जिस तरफ का स्वर चल रहा हो। जिस उद्देश्य से बाहर जा रहे हैं, वह सफल होगा। किसी व्यक्ति से बात करते समय उस पांव को थोड़ा आगे रखें जो स्वर चल रहा है। आपके शरीर की विद्युतीय

शक्ति सामने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर कार्य सिद्ध होने में सहायक होगी।

● सुख-शांति तथा स्वास्थ्य के लिए

गौ, कुत्ते तथा कौओं को भोजन का हिस्सा देने से जीवन में सुख, शांति तथा स्वास्थ्य प्राप्त करने में दैवी सहायता मिलती है। यदि दौरे पड़ते हों तो आटे के पेड़े में बताशा रखकर गाय को खिलाएं। अवश्य लाभ प्राप्त होगा

● स्वास्थ्य के लिए

चूकि घर का स्वास्थ्य सीधे-सीधे आपसे जुड़ा होता है और आपका स्वास्थ्य आपके घर को अच्छी स्थिति में रख सकता है, अत: स्वस्थ रहने के लिए घर के दर्पणों को साफ रखें। इन पर धूल आदि दर्पण के प्रभाव को घटाते हैं। जहां तक हो सकें रंग-रोगन ताजा रखें, टपकते नल फौरन ठीक कराएं, खराब बल्ब फौरन बदलें। खिड़कियां साफ रखें। शीशे टूटे हों तो फौरन बदलवाएं।

● अंगुली से मंजन न करें

हाथ का अंगूठा अग्नि तत्व, तर्जनी-वायु, मध्यमा-आकाश, अनामिका-पृथ्वी तथा कनिष्ठिका जल तत्व का प्रतीक है। इसीलिए मंजन सदैव मध्यमा अंगुली से ही करना चाहिए- अन्य अंगुलियों से मंजन करना निषिद्ध है क्योंकि मंजन करते समय केवल आकाश तत्व ही लाभकारी है।

● परेशानियों से बचने के लिए

मन की अशांति, सरकारी बाधा, पैसे की कमी जीवन की विभिन्न परेशानियों के लिए 8 दिन तक लगातर सिरहाने (तकिए के नीचे) 4 सिक्के 2-2 रुपये के रखकर सुबह किसी सफाई कर्मचारी को देना तथा कभी-कभी श्मशान घाट में स्थित भगवान शंकर की मूर्ति के सामने श्रद्धापूर्वक कोई भी 8 सिक्के चढ़ाना राहु के अशुभ प्रभाव में भारी कमी लाकर अभूतपूर्व दैवी सहायता देता है।

प्रपंच

शंभु चौधरी

इस आडम्बर का क्या इलाज ?

यह बात सही है कि मारवाड़ी समाज के एक वर्ग ने काफी धन अर्जित किया, संग्रहित किया, संचित भी किया, इसका उपयोग किया तो दुरुपयोग भी। सामाजिक कार्यों में जी-जान से खर्च किया तो शादी-ब्याहों में इसका आडम्बर करने से भी नहीं चुका। धार्मिक कार्यों या आयोजनों में धन को समर्पित किया तो खुद को पूजवाने भी लगे। समाजसेवा की तो, सेवा को बदनाम कर समाज सेवक कहलाने की एक मुहिम भी चली। कोई खुद को चांदी में तुलवाने को सही ठहराता है, तो कोई भागवत कथा के नाम पर लाखों के खर्च को। एक दूसरे को शिक्षा देने में किसी से कोई कम नहीं। एक लाखों का विज्ञापन छपवाकर समाज को शिक्षा दे रहा है, तो दूसरा इस तर्क से कि धन उनका है वे उसको कैसे भी लुटाये। वाह भाई! वाह! कमाल का है यह समाज। इस समाज का कोई सानी नहीं। कौन किसकी परवाह करता है। सभी अपने मन के मालिक हैं भला हो भी क्यों नहीं, धन जो कमा लिया है। बेशुमार दौलत का मालिक जो बन गया है यह समाज। मानो लक्ष्मी से लक्ष्मी की हत्या का अधिकार मिल गया हो इस समाज को। मारवाड़ी समाज की एक सबसे बड़ी खासियत यह है कि इस समाज को किसी भी प्रांत के साहित्य-संस्कृति-भाषा-कला या उनके रहन-सहन, खान-पान (यहां तक की राजस्थान से भी) आदि से कोई लगाव नहीं, सिर्फ और सिर्फ अपनी जीभिया स्वाद और पैसे का अहंकार इनको नीमतल्ला घाट तक पीछा नहीं छोड़ता।

परन्तु इस नालायकी के लिए सारा समाज न तो दोषी है ना ही हमें समझना ही चाहिए। समाज का समृद्ध परिवार आज भी धन के इस तरह के दुरुपयोग से कोसों दूर है, यह जो भी गदंगी और धन के नंगे प्रदर्शन में लगे लोग हैं वे या तो नाजायज तरीके से अर्जित धन को खर्च कर अपनी मानसिक विकलांगता को समाज के सामने परोस रहे हैं या फिर गांव का धन है जिसे वे खुले हाथ लुटा रहे हैं। संपन्न वर्ग और समृद्ध परिवार कभी भी अपनी दरिद्रता का प्रदर्शन नहीं करेंगे, इस तरह धन की बर्बादी को जो लोग उचित ठहराते हैं न सिर्फ दरिद्र ही हैं ऐसे लोग विकलांग भी हैं। मानो संपन्नता की आड़ में खुद के साथ-साथ समाज की दरिद्रता का प्रदर्शन करता हो, जिससे समाज का हर वर्ग न सिर्फ दुखी है, लाचार भी हो चुका है। कुछ लोग तो आडम्बर को समाज की जरूरत मानते हैं। कहते हैं नहीं तो समाज उसे दिवालिया समझेगा, अब इस दिवालियापन का क्या इलाज?

अपने अर्जित धन को खुद के बच्चों के ब्याह-शादियों में खर्च करने का समाज को पूरा अधिकार है, करना भी चाहिए, इसके लिए गली मत बनाई.... शान से खर्च कीजिए पर साथ-साथ कुछ नेक उदाहरण भी देते जाइए जिससे समाज को लगे कि आप सच में धनवान हो। धन से ही नहीं मन से भी धनवान हो। झूठी दलीलों की धरातल पर खुद के दिवालियेपन को समाज पर थोपकर, कोई लड़का वाले का नाम लेता है तो कोई लड़की वाले का।

इन दिनों ब्याह-शादियों में लोग आडम्बर तो करते ही हैं साथ-साथ इस आडम्बर को दिखाने के लिए वेबजह हजारों लोगों को जमा कर लेते हैं। पता नहीं खाने के नाम पर लोग जमा भी कैसे हो जाते हैं- कहते हैं भाई ''चेहरा तो दिखाणो ही पड़सी'' जैसे किसी मातम में जाना जरूरी हो। पिछले सालों में इसका प्रचलन तेजी से हुआ है। शहरों में एक-एक आदमी 3-4 ब्याह के कार्ड हाथ में लिए शादीबाड़ी खोजते नजर आ जाते हैं। गांव में आज भी ऐसी स्थिति नहीं हुई है। गांवों में शादी-ब्याह के नियम-कायदे लोग मानते हैं। इनमें आज भी समाज का भय बना रहता है परन्तु शहरों में खासकर महानगरों में कोई किसी की नहीं सुनने को तैयार।

इसी प्रकार भागवत भी बंचवाइये, इसके लिए जरूरी धन की व्यवस्था भी करे परन्तु जो भागवत आप क्रूज जहाज में सुनने जा रहे हैं वो भागवत कथा को बदनाम ही करता है, जो महंत इस तरह धन के लालच में भागवत कथा को बेचने की दुकान खोल लिये हैं वे हिन्दू धर्म का विनाश करने में लगे हैं, मेरा उनसे आग्रह रहेगा कि धर्म को कभी भी किसी भी रूप में कैद करने वाले ऐसे तत्वों को पनाह न देवें। मारवाड़ी समाज यदि इसके लिए गुनाहगार है तो उसे सम्मानित न होने देवें और अपनी विद्या को धर्म के प्रति समर्पित करे न कि धन के प्रति।

-संपादक 'समाज विकास'
अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन
152-बी, महात्मा गांधी रोड,
कोलकाता-700007

हमारे संरक्षक

'समृद्ध सुखी परिवार' मासिक पत्रिका के नियोजित प्रकाशन के लिए 11,000/- रुपये की राशि प्रदत्त करने वाले संरक्षक सदस्य होंगे जिन्हें आजीवन पत्रिका नि:शुल्क प्रेषित की जायेगी और पत्रिका में उनका नाम प्रकाशित किया जाएगा। हमारे प्रथम संरक्षक सदस्य हैं-

● श्री जयंतीलाल वालचंद खींचा निवासी घानेराव, प्रवासी अंधेरी वेस्ट मुम्बई

डॉ. अनामिका प्रकाश

ऐसे होती है बरसाने की लठमार होली

बरसाना राधा रानी का गांव है। यह गांव मथुरा जिले में स्थित है। हजारों वर्षों से यहां की होली विश्वविख्यात है। प्रतिवर्ष हजारों देशों तथा विदेशी दर्शक इसे देखने के लिए एकत्रित होते हैं। फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन यहां होली खेली जाती है।

इस होली का नाम लठामार होली कैसे पड़ा इस का मनोरंजक इतिहास है। बरसाने में थोड़ी दूरी पर नंदगांव स्थित है, जहां नंद बाबा रहते थे। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को नंदगांव के मंदिर का पुजारी श्रीकृष्ण के सखा के प्रतीक के रूप में बरसाने में स्थित राधिकाजी के मंदिर में पहुंचता है। मंदिर में होली के पदों का गायन होता है तथा नंद गांव का पुजारी नृत्य करता हुआ बरसाने आकर होली खेलने का प्रस्ताव रखता है, जिसे बरसाने वाले सहर्ष स्वीकार करते हैं।

अब क्या कसर रह गई? दूसरे दिन नंद गांव के होली खेलने वालों (हुरिहारों) का दल बरसाने पहुंच जाता है। रंगबिरंगे दुपट्टे, मस्तक पर चंदन, रोली के टीके, सिर पर विभिन्न रंगों की पगड़ियां, कमर में चम. चमाते हुए दुपट्टे, रेशमी कपड़ों की बनी बगलबंदियां। इनके चेहरो से हर्ष और उल्लास छलकता है, ये लोग गाते हुए आते हैं-

रसिया आयौ तेरे द्वार, खबर दीजो,
यह रसिया पौरी में आयो
जाकी बाह पकरि भीतर लीजो
रसिया आयौ तेरे द्वार खबर दीजो।

इसके उत्तर में राधिकाजी को सम्बोधित करता हुआ यह लोकगीत गाया जाता है-

दरसन दै, निकसि अटा में तें।
दरसन दैं।
कोटि रमा-सावित्री-भवानी
तेरे निकली है अंग-छटा में तें। दरसन दै।।
तू ऐसी वृषभानु नंदिनी,
जैसे निकस्यो है चंद घटा में तें।
'पुरुषोत्तम' प्रभु यह रस चख्यो,
जैसे माखन निकस्यौ मठा में तें।।

इसके बाद मंदिर के आंगन में नंद गांव और बरसाने के गोस्वामीगण आमने-सामने बैठ जाते हैं। नंद गांव वाले श्रीकृष्ण तथा बरसाने वाले श्री राधिका का पक्ष उपस्थित करते हुए आपस में व्यंग्य एवं हास्य से युक्त छींटाकशी करते हैं जिसे 'समाज' कहा जाता है। इस समय अत्यंत उल्ला. सपूर्ण वातावरण बन जाता है। ग्वालों की ओर से कहा जाता है।

बूझो याहि संग चलैगौ?
सई सांझ तैं धरी करहैया
आधी रात नसैगी, बूझो याहि।।
गोपियां उत्तर देती हैं:
इन गलियन काम कहां तेरौ?
इन गलियन मेरौ स्याल फारयो,
मैं तो फारूंगी यार झगा तेरौ।
खिसली तोहि देखि अटा में तें।
तू जो कहैं हो, तोहि अधवर लऊंगी,
मेरी टूटी है बांह बरा में तें।।

'समाज' समाप्त होने पर सब लोग गाते, बजाते, नाचते, रंगीली गली की ओर चल देते हैं जहां जम कर लठामार होली खेली जाती है।

रंगीली गली के चारों ओर दर्शनार्थियों की भीड़ लग जाती है। होली खेलने वाली स्त्रियां रंग-बिरंगी चुनरियों व लहंगों से सुसज्जित हाथ में लट्ठ लिए हुए नंद गांव में आए हुए होली खेलने वालों (हुरिहार) के स्वागतार्थ खड़ी रहती हैं और जैसे ही हुरिहार रंगीली गली में घुसते हैं, उन पर धड़ाधड़ लाठियों की बौछार होने लगती है। हुरिहार अपनी रक्षा चमड़े की बनी हुई ढालों से करते हैं। जैसे मेढ़क फुदकते हैं उसी प्रकार हुरिहार घुटनों के बल बैठ-बैठ कर चमड़े के ढालों पर लट्ठों का वार सहन करते हैं। लगभग तीन बार गीतों के गायन के साथ लाठियों की बौछार होती है और उतनी ही बार हुरिहार अपनी रक्षा करते हैं।

बरसाने की होली खेलने वाली नारियों को कुछ दिनों पहले से ही घी, बादाम आदि खिला-खिला कर पुष्ट किया जाता है ताकि वे पुरुषों पर जम कर लाठी-प्रहार कर सकें। आश्चर्य यह है कि कभी किसी के चोट नहीं आती। वातावरण स्नेहपूर्ण रहता है।

इसी प्रकार दूसरे दिन बरसाने से होली खेलने वाले (हुरिहार) नंद गांव जाते हैं। इन लोगों के साथ राधाजी की ध्वजा होती है और ये गाते-बजाते नंद गांव पहुंचते हैं जहां वहां के गोस्वामियों द्वारा उनका भांग-ठंडाई से स्वागत किया जाता है। नंदरायजी के मंदिर में 'समाज' बैठती हैं। जहां लोकगीत रसिया आदि का गायन होता है। तत्पश्चात सब लोग मैदान में उतर आते हैं और फिर उसकी प्रकार लठमार होली खेली जाती है जिसमें नंदगांव की नारियां बरसाने के हुरिहारों पर लठ बरसाती हैं। नंदगांव में होली खेलते समय प्राय: वे लोकगीत गाये जाते हैं। ब्रज की होली तो भारत में ही प्रसिद्ध है किन्तु लठामार होली को देखने तो सैकड़ों विदेशी बरसाने आकर इसका आनंद लेते हैं।

–'विभावरी', जी-9, सूर्यपुरम, नंदनपुरा
झांसी-284003 (उ.प्र.)

विपिन कुमार

योगनिद्रा: एक समग्र उपचार पद्धति

मानसिक विकास में एक अति उपयोगी प्रयोग है-'मन:-संस्थानों' को शिथिल कर देना। 'मन:-संस्थानों' को पूर्णरूपेण शिथिल कर देने की अवस्था ही 'योगनिद्रा' है। योगनिद्रा, जिसे मनोवैज्ञानिक गहरी या 'प्रसुप्ति निद्रा' कहते हैं, वास्तव में 'मन:-संस्थान' की उच्चस्तरीय परतों की निद्रा है।

अचेतन मन को विश्राम

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मन की दो प्रमुख परते हैं-'सचेतन' और 'अचेतन मन।' 'सामान्य निद्रा', जो हम सभी लेते हैं, में 'सचेतन मन' सो जाता है और 'अचेतन मन' शरीर की समस्त स्वचालित गतिविधियों-श्वास-प्रश्वास, आंकुचन, निमेष-उन्मेष आदि का संचालन करता रहता है। रात्रि में करवट बदलने से लेकर कपड़े ठीक करने व स्वप्न आदि देखने के सारे कार्य भी 'अचेतन मन' द्वारा ही किये जाते हैं।'

बहुस्तरीय : योगनिद्रा

'योगनिद्रा' के छोटे-बड़े कई स्तर हैं। छोटे स्तर को 'शिथिलीकरण' या 'शवासन' तथा बड़े स्तर को 'समाधि' कहते हैं। 'योगनिद्रा' वास्तव में इन दोनों के बीच की स्थिति हैं। कुछ योगाचार्यों ने 'योगनिद्रा' को हलकी या 'अल्पकालीन समाधि' भी कहा है। उनके मतानुसार 'ध्यान योग' के सतत अभ्यास द्वारा साधक 'योगनिद्रा' की प्राप्ति करके अनेकानेक लाभ उठा सकता है। 'योगनिद्रा' से 'अचेतन मन' (मस्तिष्क) को गहरा विश्राम मिलता है। अत: वह स्वस्थ, सक्रिय और ज्यादा कार्यक्षम बन जाता है। 'योगनिद्रा' का सिद्ध साधक 'अचेतन मस्तिष्क' को जगाकर अतीन्द्रिय क्षमता-संपन्न बन सकता है। वह अपने शरीर की सारी गतिविधियों को नियंत्रित करने में सक्षम होने के कारण बाहरी सुख-दु:ख से अप्रभावी रहता है।

योगनिद्रा और मनश्चिकित्सक

'योगनिद्रा' से मिलनेवाले इन लाभों से आधुनिक विज्ञान पूरी तरह सहमत है। आज पाश्चात्य चिकित्सकों ने 'शीतनिद्रा' के रूप में इससे मिलती-जुलती एक विधि खोज निकाली है। प्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी डेल कारेंटर के शब्दों में, ''मनुष्य को ठंडा करके गहरी 'सुषुप्तावस्था' (शीतनिद्रा) में पहुंचाकर उसे न सिर्फ रोगमुक्त बल्कि दीर्घजीवी भी बनाया जा सकता है।''

मनोवैज्ञानिकों की नजर में 'मानसिक तनाव' एवं 'विक्षोभ' के कारण मानव मन को अपार क्षति होती है। 'योगनिद्रा' द्वारा चेतना का प्रवाह शरीर निर्वाह की दिशा से हटाकर अंत:क्षेत्र की ओर मोड़ दिया जाता है। अत: व्यक्ति के मन-मस्तिष्क के सारे 'विक्षोभ' तुरंत शांत हो जाते हैं। कुछ क्षण की ली गई 'योगनिद्रा' ही मनुष्य को दीर्घकालिक विश्राम दे सकती है। विलियम सी. डेमेंट ने एक प्रयोग के आधार पर कहा है, 'योगनिद्रा' की अवस्था में व्यक्ति की चेतना का संबंध असीम चेतन-शक्ति से हो जाता है और वह अत्यल्प समय में ही अत्यधिक ऊर्जा प्राप्त कर लेता है।

आज ये ऐतिहासिक किंवदंतियां कि 'नेपोलियन तथा क्लाइव' जैसे योद्धा युद्ध के मैदान में ही किसी पेड़ से सटकर घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे ही नींद लेकर तरोताजा हो जाते थे, वैज्ञानिकों की नजर में एक कपोल-कल्पना नहीं, वास्तविकता है।

अतींद्रिय क्षमताओं का जागरण

मनश्चिकित्सकों के अनुसार 'योग निद्रा' के अभ्यास क्रम में 'पीनियल' तथा 'पिट्यूटरी ग्लैंड्स' पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इन दोनों ग्लैंड्स (अंत:स्रावी ग्रंथियों) से स्रावित 'हार्मोंस' मनुष्य के अचेतन स्तर (प्राण) को प्रभावित करते हैं। इन 'अंत:स्रावी ग्रंथियों' का अनुकूलन ही योग की भाषा में 'तृतीय नेत्र का जागरण' कहलाता है। यह तृतीय नेत्र (पीनियल ग्रंथि) अनंत विस्तृत परम चेतना का प्रवेश द्वार एवं भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों का मिलन-बिन्दु है। 'योग-निद्रा' द्वारा इस ग्रंथि के अंतस्राव को नियमित कर मनुष्य अपने स्थूल, सूक्ष्म एवं आत्मिक (कारण शरीर) आवरणों को परिमार्जित कर 'पूर्ण मानव' बन सकता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'योगनिद्रा' (जिसे थोड़ा-बहुत अंतर के साथ शीतनिद्रा, हिप्टोनिज्म, मेडीटेशन एवं मेस्मेरिज्म आदि कहते हैं) के सतत अभ्यास द्वारा 'ब्रेन सर्किटों' के मध्य नये संबंध कायम होते हैं, जिससे मानव-मस्तिष्क के सोये (निष्क्रिय) क्षेत्र जागृत हो उठते हैं। वास्तव में यही अतीन्द्रिय क्षमताओं की अनुभूति का प्रारंभ है।

'योगनिद्रा' द्वारा अतींद्रिय क्षमता संपन्न बनने की बात की पुष्टि करते हुए प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक जॉन बालगेंग वॉन योयथे ने कहा है कि उन्होंने स्वयं अपनी प्रतिभा को प्रखर बनाने में सतत इसका प्रयोग किया था।

योगनिद्रा तथा पूर्वजन्म

'योगनिद्रा' (हल्की समाधि) की दशा में व्यक्ति अपने पूर्वजन्म के बारे में भी बहुत-कुछ पता लगा सकता है। वह उस जन्म में किये अपने कार्यों को चलचित्र की भांति देख सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार 'योग-निद्रा' में जब प्रखर भावना के साथ प्राण-शक्ति को विशेष 'चक्रीय क्रम' में निरंतर प्रवाहित किया जाता है, तो 'टेंपोकल कार्टेक्स' (पौराणिक चित्रगुप्त) का एक अंश एकबारगी झनझना उठता है, जिसमें ये स्मृतियां श्रृंखलाबद्ध रहती हैं। इस तरह व्यक्ति अपने संपूर्ण अतीत की पड़ताल कर सकता है।

रोगों का निदान

'योग-निद्रा' में कठिन से कठिन रोगों को ठीक कर देने की क्षमता है। आज के मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक व अन्य चिकित्सक खुले दिल से स्वीकारते हैं कि बीमारी मानव-मन से पैदा होती है। अत: मानव मन को आराम पहुंचाकर सब प्रकार की बीमारियों से मुक्त हुआ जा सकता है। वर्तमान में 'न्यूरो सर्जरी' के अंतर्गत मस्तिष्क को विश्राम देने व तनावमुक्त करने की एक विधि निकाली गयी है, जो कि 'योगनिद्रा' से पूरी तरह मिलती-जुलती है। अमेरिका के 'कोर्ट बर्थ कैंसर काउंसिल एंड रिसर्च सेंटर' के कैंसर विशेषज्ञ डॉ. कार्ल सिमेंटन ने इस विधि का सतत अभ्यास कराकर कैंसर के कई रोगियों को स्वस्थ किया। इसी तरह के कार्य अमेरिका के ही डॉ. हार्समैन ने किये।

-केन्द्रीय विद्यालय, दमाना, लाले-दा-बाग, पो. संग्रामपुर, जम्मू

NEW LIFE FOR VIVEKANAND

Deepak Chopra

New Life for Vivekananda? It's time Ever since I was young there has been a halo around the name of Swami Vivekananda, as there was around his master's, Sri Ramakrishna Recognition outside India meant a lot a hundred years ago; it was an enviable kind of validation But to be candid, none of this reverence affected my life Vedanta was just an arcane term, and the flight of modern Indians was toward science, upward social mobility and personal freedom I imagine that anyone who took the step of joining the Indian diaspora followed the same wave that carried me to America.

It was years before I realized what I'd run away from, and now Vedanta means a lot to me It is the map to higher consciousness, never surpassed by later history yet frequently validated in fresh, new ways Vivekananda did that a century ago We honour his memory for it, but that's incidental, for the spiritual path implies action, not salute to memory Vedanta is either here and now or it is nowhere Which means that without new life Vivekananda's legacy will be inert The only viable memorial is to put his model of spirituality into practice.

I'm avoiding the phrase "put his ideas into practice," because Vedanta, once reduced to ideas, is equally lifeless So what would Vivekananda ask us to do today, here and now? First, to put into practice his famous adage: Jiva is Shiva A lifetime can be richly devoted simply to these three words. They tell us that individual God-realization is possible; also that external deities exist only to point inward Further, they imply that inner transcendence is the path to reach the Absolute None of this is news, and it would be easy to gather countless aspirants who strive to put these words into practice in their daily lives.

What is the secret of success, since so many of these aspirants fall short of the goal? The secret is: There is no goal The present moment is the home of Vedanta and also the home of Self-realization The present moment isn't heading anywhere; it has no goal or endpoint Seen as Vivekananda would see it, the now is eternal; it is the only time that renews itself endlessly In the now we experience two things only: the rush of events, both physical and mental, and the background of consciousness which acts like the screen upon which experience is registered.

Experience is passing scenery; consciousness is silent observer For most, these two are jumbled together Caught in the rush of experience, they've lost the silent observer and so cannot walk through the door that opens to the transcendentVivekananda's work was mainly occupied with revealing the transcendent. He left many inspiring reminders to point us in the right direction: "You have to grow from the inside out None can teach you, none can make you spiritual There is no other teacher but your own soul.

""You cannot believe in God until you believe in yourself" And, "The goal of mankind is knowledge No knowledge comes from outside: it is all inside." Reminders in this case are actually goads to action The first duty of every person is to develop a true self This cannot be done without the inner knowing that Vivekananda embodied as did Vedic sages The time is always right for transcendence.

No worldly accomplishments are substitutes nor as worthy as the project of developing a true self The best way to honour Vivekananda begins at this very moment, with each of us. ■

DESIRE GOD ALONE

Ramnath Narayanswamy

Swami Yogananda Paramhansa was a spiritual master of exceptional repute. His accounts of his encounters with his Guru Sri Yukteshwar, and his Guru Sri Lahiri Mahasya and his Guru, Sri Babaji, are now an integral part of spiritual literature on Kriya yoga.

He was once asked what was the biggest problem facing humankind. "Man's greatest problem is his ego – his consciousness of individuality. Whatever happens to him, he thinks it affects him personally. Why be affected? You are not this body. You are He! Everything is He: All is Spirit."

"Unfortunately," continued the Master, "mankind sees everything as separate and individual. The Lord has to create this appearance. Ask yourself however: Why? Why is this a tree and you a human being?

The answer is simple: without that variety, there would be no play. It would not interest you. If people saw that there was only one essence in everything – directing all the action and acting all the parts – they would quickly tire of it.

For the 'show to go on' there has to be activity and interest. It has to seem real. Whence this seeming appearance of individuality."

But, it is important to be a spectator of the play and not an active participant: "As long as man enjoys the play for its own sake, he will go on birth after birth, experiencing life's pleasures and pains. The Bhagavad Gita describes it as a wheel, constantly turning."

The secret behind getting out of the play lies in the intensity of exit: "To get off the wheel, you have to desire freedom very intensely. Only then will God release you. Your longing has to fervent. If it is and you are determined no more to want to play, the Lord has to release you.

"He tries to keep you here with tests but in His higher aspect, as the Cosmic Lover, He hates this show and wants you out of it. Why should He not release you once He sees that you really want Him alone and not His show: that you want only freedom in Him?"

"The same essence – conscious life – is in you and in that tree over there and is present in both. The tree however was put there, whereas some free will on your part made you who and what you are. Only the wise know just where predestination ends and free will begins.

Meanwhile you must keep on doing your best according to your own clearest understanding. You must long for freedom as the drowning man longs for air.

"Without sincere longing, you will never find God. Desire Him above everything. Desire Him that you may share Him with all. That is the greatest wish." ■

BECOME FREE

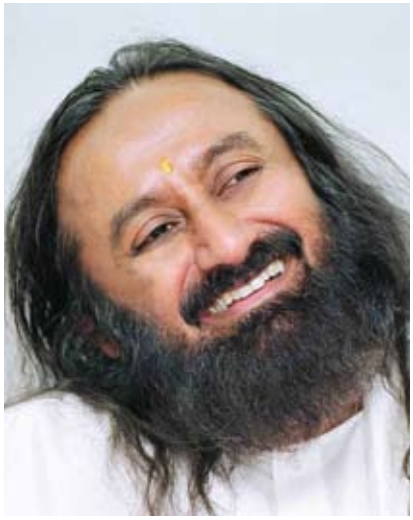

Sri Sri Ravi Shankar

There are two oxen, which pull a cart. The two wheels of this cart are abhyasa (practice) on one side and vairagya (dispassion) on the other. What is vairagya?

The 15th sutra of the Patanjali Yogasutras explain vairagya (dispassion) as- Drishtanu shravikavishaya vitrush'asya vashikara sanjna vairagyam meaning, "dispassion is that state of supremacy of consciousness in which one is free from the thirst of the perceptible and celestial enjoyment".

You just keep quiet, close your eyes or open your eyes or do anything. Where does your mind go? It travels towards the sense of sight, smell, taste, sound or touch. Or it gallops towards something it has heard.

Vitrushnasya vashikara sanjna vairagyam. The mind that gallops is an obstruction. Whenever you want to meditate, your mind should be in dispassion. Without dispassion your meditation is no good and cannot provide you the rest that you are longing for. An expectation in meditation is an obstruction.

Even a few moments of retrieving our senses, the craving or thirst for objects and going back to the source is vairagya. Vairagya is that, when, for a few moments, however beautiful a scenery is, you say: "I am not interested at looking at it right now". However good the food is, you say, "This is not the time. I am not interested in it".

Your mind is tired and bogged down by galloping through desires. It is so tired. Just turn back and see all the desires you have had. Have they given you rest? No. They have only created a few more desires and then more desires. They have given you more, for you to achieve more and have another trip on the merry-go-round horses, which do not go anywhere. They just go round in the same place.

Your desire for pleasure or happiness makes you unhappy. Examine whenever you are unhappy or miserable. Behind that is your wanting to be happy. Craving for happiness brings misery. If you do not even crave even for happiness, then you are happy. If you get whatever you wanted, then are you happy? Happiness is a mere idea in the mind.

Vairagya is putting a stop to craving for happiness. That does not mean you must be miserable. It does not mean you should not enjoy yourself, but only when you retrieve your mind from the craving for joy, can you meditate and yoga happens.

Free yourself from this feverishness that is gripping your mind. Free yourself from this craving for happiness. Before this earth eats you up, become free. Skillfully handling the objects of senses and bringing it to the self is dispassion or vairagya. The first step is when you do not care for happiness. The second step is param vairagya or supreme dispassion when you do not even care for liberation. Then you are free. You are liberated and you attain love. ■

THE WAYS OF THE WORLD

Swami Sukhabodhanand

Why does God burden me alone with so much strife?In a village a young boy was playing by the river's edge Suddenly, he heard a cry for help: "Save me, please save me!"A crocodile was caught in a net and it cried out for help The boy hesitated:What if the crocodile ate him up? But the crocodile pleaded with him and said,"I promise you that i won't devour you Please save me!" Moved, the boy began to cut the net that had trapped the crocodile No sooner was its head free from the.net than the crocodile grabbed the boy's leg in its jaws.

Now it was the boy's turn to cry "How unfair you are!" he shouted The crocodile said: "What to do? Such is the way of the world Such is life," and continuedThe boy was not worried about dying;he couldn't accept crocodile's ingratitude While his leg was slowly sliding into the jaws of the crocodile, the boy looked at the birds on a nearby tree and asked:"Is the crocodile uttering the truth? Is life unjust? Are not words honoured?"The birds replied,"We take such care to.build safe nests on the tops of trees to protect our eggs.

Yet, snakes come and swallow them The crocodile is right Then the boy saw a donkey grazing on the banks of the lake and repeated his question "When i was young, my master loaded soiled linen on my back and extracted maximum amount of work from me Now that I am old and feeble, he has abandoned me Such is indeed the way of the world There is injustice and unfairness and such is life!" said the donkeyThe boy, still not convinced, noticed a rabbit and repeated his question The rabbit said,."No, no! I cannot accept what the crocodile is saying.

It is utter nonsense!" Hearing this, the crocodile became angry and wanted to argue with the rabbit, even while holding the boy's leg in its strong jaws The rabbit protested, saying that as the crocodile's mouth was choked with the boy's leg, it was not able to decipher what the crocodile was trying to say The crocodile laughed heartily at this and said, "I am not a fool! If i let go, the boy would run away!"."Now, you are really stupid," said the rabbit "Have you forgotten how.strong your tail is? Even if he runs, you can smash him with just one mighty lash of your tail!"The crocodile fell for this and releasing the boy, continued its argument and the boy took to his heels.

Only when it tried to raise its tail, did the crocodile realise that it was still entangled in the net The crocodile glared at the rabbit The rabbit smiled sweetly, saying: "Now do you understand? Such is the way of the world! Such is life!"In a short while, the young boy returned with the villagers A dog that came along spotted the rabbit and started chasing it The boy screamed at the dog "This rabbit saved my life; don't attack him" Alas, before the boy could intervene, the dog had.chased and killed the rabbit in a jiffy.

The distressed boy cried and said to himself, "What the crocodile said was true Such is the way of the world Such is life!"Unfairness is a part and parcel of life Such is the way of life Can we teach ourselves not to be victims of unfairness and face it with the understanding that life's mysteries cannot be fully understood? ■

डॉ. उषा अरोड़ा

सौंदर्य की प्रतीक मेंहदी

भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम रहस्यमयी रत्न मंजूषा है-मेंहदी। मेंहदी शब्द सुनते ही एक सुकोमल भावना मन को छू लेती है। श्रृंगार रस की एक मीठी-सी गंध मन को गुदगुदाती है। जब श्रृंगार के अन्य प्रसाधन उपलब्ध नहीं थे, तब भी युवतियां पत्र पुष्पों के रसों से अपने अंगों को सजाती थीं। सौंदर्य की लालसा आज से नहीं अनादि काल से नारी को है। संभव है श्रृंगार के इसी भाव से मेंहदी की परंपरा की शुरुआत रही हो।

रतिरंग में क्रीड़ा

कुछ विद्वान मेंहदी की उत्पत्ति के साथ मिस्र का नाम जोड़ते हैं। मानते हैं लगभग पांच हजार वर्ष पहले मिस्र की गरम और शुष्क मिट्टी से मेहंदी की सोंधी गंध फूटी। इलियट स्मिथ भी मेंहदी को मिस्र से आयी बताते हैं। अपने मत की पुष्टि में पुराने कब्रिस्तानों में पाये गये ममीज के हाथों-पैरों पर इसका प्रयोग बताते हैं। 'डल्लण महाशय' कहते हैं कि यह मेंहदी फारसी घोड़ों के साथ ही भारत आयी। पर वास्तव में मेंहदी को भारत की बाहों में ममता मिली और प्रेम के लिए रतिरंग में क्रीड़ा की रंगस्थली भी मिली।

कहा जाता है कि मेंहदी चूंकि मेह ने दी है, इसलिए मेंहदी कहलायी। लोकगीतों में इसका वर्णन मिलता है और इसके माध्यम से रूप-लावण्य, श्रृंगार आदि की अभिव्यक्ति की है। वर्णन मिलता है कि सबसे पहले मेंहदी का पेड़ समेरू पर्वत पर उगा तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखायी दिया। मेंहदी को वासुदेव ने दूध से सींचा और बलराम ने उसकी देखभाल की। रामायण और महाभारत में भी इसका उल्लेख कई जगह मिलता है। राम जब रावण का वध करके लौटे और कृष्ण जब राधिका को लाये, तब अपने-अपने महलों में सुहागिनों ने अपने श्रृंगार में चार चांद लगा लिये थे। मेंहदी की महिमा नित्यनाथ सिद्ध ने अपने ग्रंथ 'रस रत्नाकर' में स्वीकार की है और बताया कि यह शब्द 850 वां पूर्व भारत में प्रचलित था। प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों में 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' में मेंहदी का उल्लेख औषधि के रूप में मिलता है। आयुर्वेद ग्रंथों में तिमिर, नरवगंज, यवनेष्टा, मेदिक शब्द मेंहदी के लिए प्रयुक्त हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में दो हजार वर्ष पहले मेंहदी या मोन्हीका का उल्लेख है, पर संस्कृत में कम है।

सांस्कृतिक जीवन का अंग

मेंहदी एक प्रसिद्ध गुल्म जातीय पौधा है। इसके पत्ते हरे और पीसने पर लाल रंग के हो जाते हैं। वर्षा की रिमझिम बूंदों के साथ मेंहदी के हरे-हरे पत्ते खिलकर महक उठते हैं। मेंहदी भारत के सामाजिक धरातल पर लोकप्रिय और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है।

मेंहदी पूरी तरह हमारी संस्कृति से जुड़ी है, पर हर त्यौहार में, सुहाग पर्वों पर, शादी-ब्याह, गोद भरने, संतानोत्पत्ति आदि पर मेंहदी की कला हाथ-पैरों पर उकेरकर, मनोहारी और आनंद की अनुभूति होती है। नयी-नवेली दुलहन के हाथों में कलश, सावन की रिमझिम बूंदों में हथेलियों पर लहरिया, गणगौर पर घेवर की गोल-गोल छटा, ढफ ढोलकी, कलात्मक ढंग से मांड मेंहदी निखर उठती है। प्रत्येक उत्सव, त्यौहार, पर्व, शादी, प्रसव में तो यह सौंदर्य का मुख्य प्रसाधन है। जनमान्यता के अनुसार दुल्हन की हथेलियों पर लाल रची मेंहदी पिया के प्रगाढ़ प्रेम की द्योतक है।

मेंहदी का उपयोग

पहले मेंहदी को पीसकर तब हाथ-पैरों में लगाते थे लेकिन अब बाजार में पिसी-पिसाई मेंहदी प्लास्टिक की थैली में खूब मिलती है। खरीदते समय ध्यान रखिए कि मेंहदी का रंग हरा हो और घोलने के बाद मेंहदी में लेस कम हो। मेंहदी के पाउडर को नाइलॉन के कपड़े से छानकर मेंहदी घोलने के बाद एक बताशा उसमें दबा दें। इससे मेंहदी चिपकी रहेगी। यदि मेंहदी अच्छी नहीं है तो कैरोसिन के तेल की चार-पांच बूंदें डालकर खूब अच्छी तरह थाली में फेंट लें। फिर चना चूर गरम की थैली की तरह कोन बनाइए। कोन के नीचे की तरफ छोटा-सा कैंची से छेद कीजिए। कोन में चम्मच से मेंहदी डालिए फिर ऊपर से धागा बांध दीजिए। हाथ-पैर जहां भी मेंहदी रचानी है, वहां पर पहले मेंहदी का तेल लगा लीजिए। कोन कलाकृति के अनुरूप घुमाइए। इससे मेंहदी बहुत बारीक लगती है। मेंहदी एक अंग में मांडणे के 20 मिनट बाद उस पर नींबू का रस लगाइए। मेंहदी उतारने के तुरंत बाद हाथ मत धोइए बल्कि सरसों का तेल लगाइए, इससे मेहंदी में बहुत चमक आ जाती है। मेंहदी का उपयोग केवल हाथ-पैरों को मांडणे में ही नहीं है, बल्कि बालों को काला करने के लिए भी बहुत प्रचलित है। ब्यूटी पार्लर में यह कार्य बहुत तेजी से हो रहा है। मेंहदी बालों में लगाने से बाल भी काले होते हैं, दिमाग ठंडा रहता है और आंखों की ज्योति अच्छी रहती है। मेंहदी का हाथ-पैर में लेप करने से जलन दूर होती है। गरमी का प्रकोप हो तो नाभि पर मेंहदी लगाने से बहुत लाभ होता है। पैरों में बिवाई फटने पर मेंहदी पीसकर लगाइए। मुंह में छाले होने पर इसके क्वाथ से कुल्ला करना लाभकारी है। कोढ़ रोग में मेंहदी उपयोगी है।

सुहाग और सौंदर्य की प्रतीक मेंहदी जन-जन के सामाजिक जीवन में रची-बसी है। उल्लास और प्रसन्नता की परिचायक मेंहदी मांडणा एक कला है। इस कला को प्रोत्साहित करने के लिए क्लबों में प्रतियोगिता होने लगी है। गोरे-गोरे हाथों में लाल रची मेंहदी साजन की बाहों में पिया की शरम से मुखरित हो उठती है।

-कन्हैया सदन, खत्रीपाड़ा, अतरौली, अलीगढ़-202280 (उ.प्र.)

जीवन-दर्शन

मंजुला जैन

भय और भारस्वरूप नहीं है बुढ़ापा

मनुष्य तमाम सुख-सुविधाओं का उपयोग करने के पश्चात जीवन के चौथे सोपान अर्थात वृद्धावस्था में प्रवेश करते हुए एकाएक स्तब्ध रह जाता है। सुबह हुई, सांझ होगी। जिन्दगी बदलती चली जाती है, बचपन, यौवन और बुढ़ापा। यहां कोई चीज स्थिर नहीं है। सब बदल रहा है। इस सारे बदलते हुए वर्तुल के बीच आदमी बुढ़ापा ओढ़ लेता है। बुढ़ापा भय एवं भार का विषय नहीं हैं, जिस तरह बचपन एवं यौवन जीवन का उपयोगी दौर है, उसी तरह बुढ़ापा यानी सेवानिवृत्ति का समय भी जीवन का महत्वपूर्ण पायदान है।

प्रख्यात साहित्यकार श्री विमल मित्र ने लिखा है- ''मनुष्य की जितनी उम्र बढ़ती है, उतना ही वह अतीत की ओर लौट जाता है। सामने का भविष्य उसके सामने अस्पष्ट हो जाता है। इसीलिए शायद सब लोग अतीत के विषय में ही बुढ़ापे में ज्यादा हलचल करते हैं।'' असल में सेवानिवृत्त उम्र की वह दहलीज है, जिसे हम वर्तमानजीवी बनकर ही अधिक सार्थक एवं प्रासंगिक बना सकते हैं।

आप बुढ़ापे के बारे में अपने नजरिये को बदलिए। दरअसल बुढ़ापे की मानसिकता ही मनुष्य को समय से पहले बूढ़ा बना देती है। अत: इस मानसिकता को परिवर्तित करें। स्वस्थ रहिए और स्वस्थ सोचिए। यह जीवन का ऐसा दौर है, जिसमें आपके पास पर्याप्त समय होता है, जिम्मेदारियां कम हो जाती हैं, अत: इस समय का नियोजन संरचनात्मक कार्यों में कीजिए। परिवार के साथ उचित तालमेल बढ़ाएं।

बुढ़ापे को भय का कारण न बनाएं। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अकारण भय से पीड़ित रहने वाले का भय सच्चाई में बदल जाया करता है। भय हमारी शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता का सूचक है।

मानव जैसे सोचता है, वैसा बनता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सकारात्मक सोचें। प्रसन्नतापूर्ण आशा वाली मनोदशा ही जीवन के उतार-चढ़ावों का सामना करने में सर्वाधिक सफल होती है। चिन्ता छाई रहना, मनहूस मन से बुरी बातों के होने की आशंका करना, निरुत्साहित करने वाले तथा दिल तोड़ने वाले कष्टों से भयभीत रहना, तनाव, आशंका, भय- इन सबको त्याग दो। ये सब बातें त्याज्य हैं। इनके स्थान पर मन को प्रसन्न रखकर बुढ़ापे को संवारे। चाहे लक्षण बुरे ही क्यों न दिखाई दे रहे हों, असफलता को छोड़कर सफलता का विचार मन के भीतर लाएं। स्वास्थ्य का विचार करें, रोग का नहीं। यथार्थ और उचित विचार करना, निरन्तर उसके लिए उत्साहपूर्ण रहना और अपनी महत्वाकांक्षाएं पूरी करने के लिए अपनी सामर्थ्य पर विश्वास करना–यही सब प्रकार की विचारधाराएं आपके सेवानिवृत्त जीवन को सार्थक आयाम दे सकती है। हमारे विचार ही सब कुछ हैं। जैसे हमारे विचार होंगे, हम वैसी ही वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करेंगे। बुढ़ापे का साहस के साथ सामना करने की शक्ति हमें विचारों से ही मिल सकती है। दृढ़ता, साहस, उत्साह का अभ्यास होने से वृद्धावस्था में आने वाले संकट कम हो सकते हैं।

- रिटायरमेंट के भय से भयभीत न हों।
- मन को तनावग्रस्त न होने दें।
- अधूरे दायित्वों को पूरा करने का प्रयास करें।
- दूसरों पर निर्भर होने के भय से ग्रस्त न हों।
- मन को दुर्बल न होने दें।
- 'एकला चलो' के सिद्धांत को अपनाएं।
- परिवार में सम्मान की कमी को लेकर परेशान न रहें।
- स्वास्थ्य को लेकर चिंतित न हों।
- काम को लेकर चिन्ता न करें।
- परतंत्रता को स्वीकार न करें।
- अधिकार में कमी को लेकर चिंतित न रहें।

–'कैसे जीएं पचास के बाद' पुस्तक से

फार्म - 8

(नियम 8 देखिए)

1. नाम	समृद्ध सुखी परिवार
2. प्रकाशन-स्थान	दिल्ली
3. प्रकाशन-अवधि	मासिक
4. मुद्रक का नाम	ललित गर्ग
क्या भारत के नागरिक हैं?	हां
यदि विदेशी हैं तो	
मूल देश का नाम	नहीं
पता	ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट 25 आई. पी. एस्सटेंशन, पटपड़गंज दिल्ली-110092
5. प्रकाशक का नाम	ललित गर्ग
क्या भारत के नागरिक हैं?	हां
यदि विदेशी हैं तो	
मूल देश का नाम	नहीं
पता	ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट 25 आई. पी. एस्सटेंशन, पटपड़गंज दिल्ली-110092
6. संपादक का नाम	ललित गर्ग
क्या भारत के नागरिक हैं?	हां
यदि विदेशी हैं तो	
मूल देश का नाम	नहीं
पता	ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट 25 आई. पी. एस्सटेंशन, पटपड़गंज दिल्ली-110092
7. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी हों या जिनका हिस्सा हो	नहीं

मैं ललित गर्ग एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

01-03-2011 ललित गर्ग

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

गणि राजेन्द्र विजय के तप की पूर्णाहुति एवं पारुल की दीक्षा

एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय का लोकार्पण

निकेश जैन

कवांट। सुखी परिवार फाउंडेशन द्वारा निर्मित एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय के लोकार्पण, इस निमित्त लंबे समय से 500 आयंबिल की साधना के तप में रत सुखी परिवार अभियान के प्रणेता गणि राजेन्द्र विजयजी के तप की पूर्णाहुति एवं पारणे, आदिवासी कन्या सुश्री पारुल राठवा के दीक्षा आदि के तीन दिवसीय कार्यक्रमों ने कवांट की संपूर्ण फिजा में एक अनूठी आध्यात्मिकता, उत्सवप्रियता एवं सांस्कृतिकता का संचार किया। इन आयोजनों के लिए निर्मित भव्य पंडाल श्रद्धालुओं-आदिवासी जन-जीवन से खचाखच भरा अपूर्व उत्साह, जयकारों की गूंज, फिजाओं में बिखरती स्वर लहरियां, अपने आचार्य भगवंत एवं गणिजी के प्रति वर्धापना भाव, अभिनन्दन के स्वर, हर्षित चेहरे- इन तीन दिनों के मुख्य परिदृश्य रहे। अस्सी हजार से अधिक की विशाल जनसमूह की उपस्थिति में दीक्षा, लोकार्पण, गणिजी का अभ्यर्थना समारोह अपने आप में अनूठा और विलक्षण था, जिसे देखने वाले अपने आप में धन्यता का अनुभव कर रहे थे।

यह एक विलक्षण अवसर था जिसमें जनकल्याण की भावना के साथ-साथ संयम और साधना के आध्यात्मिक दृश्य समाये हुए थे। बिना किसी राजनेता के या किसी सेलिब्रिटी के इतनी विशाल उपस्थिति एक ऐतिहासिक घटना थी। न पुलिस प्रशासन और न अन्य सरकारी व्यवस्थाओं के बावजूद तीन दिन के विविध कार्यक्रम अनुशासन और व्यवस्था के प्रेरक दृश्य उपस्थित कर रहे थे। एक संत ने अपनी जन्मभूमि के प्रति और जन्मभूमि के लोगों के प्रति जो परोपकार एवं जन-कल्याण भावना को साकार किया उससे यह संपूर्ण आदिवासी क्षेत्र अपने गुरुजी के प्रति श्रद्धानत दिखाई दिया।

साहित्य मनीषी आचार्य श्रीमद् विजय वीरेन्द्रसूरीजी, पंन्यास अरुण विजयजी म.सा, पंन्यास धर्मशील विजयजी म.सा., सुखी परिवार अभियान के प्रणेता गणि राजेन्द्र विजयजी म.सा., मुनिराज हरिषेण विजयजी म.सा., मुनिराज रश्मेन्द्र विजयजी म.सा., मुनिराज धरणेन्द्र विजयजी म.सा. के साथ साध्वीश्री जयपूर्णाश्रीजी म.सा. एवं साध्वीश्री कल्परसाश्रीजी म.सा. की पावन निश्रा में प्रथम दिन दिनांक 4 फरवरी 2011 को श्री मुनि सुव्रत स्वामी जिनालय का स्कूल परिसर में भूमि पूजन एवं उसी दिन रात्रि में लोक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित हुआ। अगले दिन सुखी परिवार अभियान की गुजरात शाखा के अध्यक्ष श्री ईश्वरभाई राठवा की सुपुत्री मुमुक्षु कुमारी पारुल की दीक्षा निमित्त शोभा यात्रा आयोजित हुई। रात्रि में दीक्षार्थी पारुल का विदाई समारोह भव्य रूप में आयोजित हुआ। विदाई का यह दृश्य सबको भाव विभोर करने वाला था। इसी कार्यक्रम में सुखी परिवार फाउंडेशन के विशिष्ट सहयोगी एवं इन तीन दिनों के कार्यक्रमों के लाभार्थी परिवारों को सम्मानित किया गया। सम्मान पाने वालों में क्षेत्रीय सांसद श्री रामसिंह भाई राठवा, सुखी परिवार फाउंडेशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष मनीष जैन, मेरठ के कुसुम बहन नगीनभाई जैन परिवार के श्री मोहित जैन, श्री रमेश जैन-उषा बेन जैन लंदन, बड़ोत के श्री संजयकुमार, अजयकुमार, मनोजकुमार एवं अनुराग जैन, श्री शैलेन्द्र घीया जैन मित्र मुम्बई, आत्मानंद जैन सभा के अध्यक्ष श्री राजकुमार जैन, नीव कंस्ट्रक्शन के चंदूभाई जैन मादानी मुम्बई, प्रकाशभाई चंदूभाई पटेल-राजेशभाई डाह्याभाई पटेल वडोदरा, श्री लाटबाबू जैन-दिल्ली, संघवी शाह रमेश फूलचंद-शारदादेवी, संजय परेश मुम्बई भायंदर, श्रीमती उल्लासी बेन, शेषमल पोरवाल मुम्बई आदि विशिष्ट जनों का बहुमान किया गया। इस अवसर पर विधिकारक एवं सांस्कृतिक संयोजक श्री जयेशभाई शाह अहमदाबाद एवं संगीतकार श्री कुंदनभाई मोरबीया मुम्बई ने कुमारी पारुल के विदाई समारोह को एक नये परिवेश में संयोजित करते हुए जन-जन के मन में साधना के पथ पर अग्रसर होने के भाव पुष्ट किए। विदित हो मुमुक्षु पारुल इंजीनियरिंग में डिप्लोमाधारी होने के साथ-साथ सीमेक कंपनी में कार्यरत थी। उच्च शिक्षा और उच्च कैरियर के होते हुए भी संसार की असारता को समझते हुए संयम मार्ग पर अग्रसर हुई है। आदिवासी और जैनेत्तर होने के बावजूद गणि राजेन्द्र विजयजी की प्रेरणा से साध्वी कल्परसाश्रीजी की पावन निश्रा में उसने संयम मार्ग पर अग्रसर होने की शिक्षा हासिल की।

दिनांक 6 फरवरी को एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय के लोकार्पण के साथ-साथ गणि राजेन्द्र विजयजी के 500 आयंबिल के

पारणे का कार्यक्रम भव्य रूप में आयोजित हुआ। इस अवसर पर क्षेत्रीय संसद एवं फाउंडेशन के संरक्षक श्री रामसिंह भाई राठवा, सुखी परिवार अभियान के अध्यक्ष श्री मनीष जैन, वल्लभ स्मारक दिल्ली के महामंत्री श्री राजकुमार जैन, स्थानीय विधायक श्री बी. सी. राठवा आदि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए गणि राजेन्द्र विजयजी के संकल्प एवं साधना को नमन किया। इस अवसर पर साहित्य मनीषी आचार्य श्रीमद् विजय वीरेन्द्र सूरीजी म.सा. ने मुमुक्षु पारुल की दीक्षा विधि को विधिवत संपन्न करवाया। जैसे ही दीक्षा विधि संपन्न हुई एवं मुमुक्षु पारुल को संयम जीवन का नया नाम साध्वी पदस्थरसाश्रीजी प्रदत्त किया गया वैसे ही उपस्थित विशाल जनसमूह ने उन्हें नमन करते हुए उनके भावी आध्यात्मिक जीवन के प्रति अपनी श्रद्धा और आस्था व्यक्त की।

इस अवसर पर उड़ीसा से आए आदिवासी लोक-कलाकारों ने विविध शारीरिक करतब दिखाए। करीब बीस कलाकारों की यह टोली विशेष रूप से उड़ीसा से आई। स्थानीय आदिवासी कलाकारों ने भी अपनी सांस्कृतिक प्रस्तुतियां दी। इस अवसर पर आदिवासी क्षेत्र की 500 महिलाओं को महिलाओं का परिधान साड़ी आदि भेंट की गई। इस क्षेत्र के करीब दो हजार युवकों को टी शर्ट दी गई। करीब चालीस हजार आदिवासियों को मुफ्त भोजन करवाया गया।

गणि राजेन्द्र विजय ने अपने ओजस्वी वक्तव्य में कहा कि एकलव्य ने गुरु दक्षिणा में अपना अंगूठा दान किया था, यह एक तरह की साजिश थी जिससे आदिवासी अपनी क्षमताओं और योग्यताओं को प्रदर्शित न कर सके लेकिन हम एकलव्य का अंगूठा लौटाने के लिए कृतसंकल्प है। आदिवासी लोगों ने सदैव ही बलिदान की भावना से अपने आप को न्योच्छावर किया लेकिन उनके बलिदान का मूल्यांकन नहीं किया जा सका। आज की सरकारें भी आदिवासी लोगों को लाभ पहुंचाने के बजाय उनसे वोट हथियाने की राजनीति करती है। यही कारण है कि समय-समय पर आदिवासी लोगों को हथियार उठाने को मजबूर होना पड़ता है। लेकिन हम अहिंसा के बल पर आध्यात्मिक शक्ति से आदिवासी लोगों को उनके अधिकार और हक दिलाने के लिए प्रयासरत हैं। गुरु वल्लभ एवं गुरु इन्द्र ने इस क्षेत्र के कल्याण के लिए व्यापक कार्य किया हम उन्हीं कार्यों को आगे बढ़ा रहे हैं।

गणि राजेन्द्र विजय के शब्दों में, सुखी परिवार अभियान का तात्पर्य है कि जीवन दिशा का परिवर्तन। आडम्बर और कुरूढ़ियों के चक्रव्यूह को भेदकर संयम, सादगी, अहिंसा और सहजीवन की ओर अग्रसर करना। विषमता और शोषण के पंजे से समाज को मुक्त करना। अहिंसा और अपरिग्रह के माध्यम से जीवन विकास का मार्ग प्रस्तुत करना। जीवन की कुंठित धारा को गतिशील बनाना।

इस अवसर पर गणि राजेन्द्र विजय ने आदिवासी स्त्रियों के प्रति होने वाली उपेक्षा एवं दयनीय व्यवहार को बदलने का भी आह्वान किया। इस संदर्भ में उन्होंने आदिवासी समाज को केवल उपदेश ही नहीं दिया बल्कि सक्रिय प्रयोगात्मक प्रशिक्षण भी दिया, इसके लिए उन्होंने चालीस दिन तक आदिवासी क्षेत्रों में ज्ञानज्योति अभ्युदय यात्रा के माध्यम से घर-घर पर दस्तक दी।

करीब बारह करोड़ की लागत से निर्मित हुए और निर्मित हो रहे एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय के मुख्य भवन का निर्माण कार्य इतने कम समय में होना सबको आश्चर्यचकित कर रहा था। इस कार्य में गुजरात सरकार के और अन्य उदारमना सौजन्य दाताओं आर्थिक सौजन्य के प्रति भी आभार व्यक्त किया गया। परिसर में विद्यालय भवन के अलावा छात्रों एवं छात्राओं के लिए अलग-अलग छात्रावास निर्मित हो रहे हैं। इनका निर्माण कार्य समाप्ति की ओर है। इसके बाद प्रशासनिक भवन, ऑडिटोरियम, कैंटीन, खेल-कूद मैदान एवं प्रयोगशालाएं निर्मित होंगी। ये संपूर्ण निर्माण कार्य हो जाने के बाद यह संपूर्ण परिसर सबको आकर्षित करेगा।

इन तीन दिवसीय कार्यक्रमों की संयोजना में क्षेत्रीय सांसद श्री रामसिंहभाई राठवा, राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री मनीष जैन, महामंत्री श्री ललित गर्ग, गुजरात शाखा के श्री ईश्वरभाई राठवा, श्री विजयभाई राठवा, श्री मयूरभाई राठवा, श्री अमरसिंह भाई राठवा, श्री रमेश जमादार, श्री कानन भावसार, श्री वल्लभ देसाई, पूर्वी दिल्ली शाखा के श्री तरसचंद जैन, श्री मुकेश अग्रवाल, श्री गोपाल शर्मा, मुम्बई शाखा के श्री निकेश जैन, श्री चेतन जैन, श्री दीपक जैन आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा।

एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय का लोकार्पण गणि राजेन्द्र विजयजी की सन्निधि में सांसद श्री रामसिंहभाई राठवा, नीव कंस्ट्रक्शन के श्री चंदभाई वी. जैन मदानी, वल्लभ स्मारक दिल्ली के महामंत्री श्री राजकुमार जैन, श्री शैलेन्द्र घीया जैन मित्र मुम्बई, श्री मोहित जैन मेरठ, सुखी परिवार फाउंडेशन के अध्यक्ष श्री मनीष जैन आदि के करकमलों से संपन्न हुआ।

इस समारोह में देश के कोने-कोने से हजारों की संख्या में श्रद्धालुजन उपस्थित हुए और यहां निर्मित हुए एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय एवं सुखी परिवार फाउंडेशन की समस्त गतिविधियों को देखकर सुखद आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि यही सच्चा सेवा कार्य है, जनकल्याण है और मानवता का उपकार है। ■

सार्थक दिशाओं का उद्घाटन

ललित गर्ग

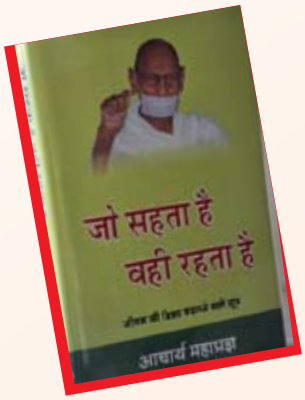

पुस्तक जो सहता है वही रहता है
लेखक आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक जैन विश्वभारती, लाडनूं जिला-नागौर (राजस्थान)
पृष्ठ संख्या 182
मूल्य रु. 150

महापुरुष देश-काल की सीमा से परे होते हैं, वे समय को अपने साथ बहाकर ले जाने की क्षमता रखते हैं तथा अपने दर्शन एवं जीवन से जनचेतना में एक नयी स्फूर्ति भरने का कार्य करते हैं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ इक्कीसवीं शताब्दी के शीर्ष आध्यात्मिक महापुरुष थे, जिनके व्यक्तित्व में विकास की ऊंचाई एवं विचारों की गहराई एक साथ संक्रांत थी। यह हम लोगों का सौभाग्य है कि हमने उस महापुरुष को प्रत्यक्ष देखा, सुना और उसके विचारों से लाभान्वित हुए। उनके महाप्रयाण के तत्काल बाद उनकी तीन सौवीं पुस्तक के रूप में मुनि जयंतकुमारजी के संपादन में 'जो सहता है वही रहता है' पुस्तक सामने आई है। यह पुस्तक सामाजिक, राष्ट्रीय और वैयक्तिक जीवन की अनेक सार्थक दिशाएं उद्घाटित करती हैं। 7 विस्तृत आलेखों के माध्यम से प्रस्तुत कृति में व्यापक संदर्भों में नवीन आध्यात्मिक मूल्यों का प्रकटीकरण हुआ है। 'जो सहता है वही रहता है' पुस्तक का प्रथम आलेख है जिसमें आचार्य महाप्रज्ञ की सूक्ति है- ''शक्तिशाली ही सहिष्णु बन सकता है। जो सहिष्णु होता है, सहना जानता है, वही अपने अस्तित्व को बनाये रख सकता है।''

इस पुस्तक में कुछ आलेख व्यक्तिगत अनुभूतियों से संबंधित हैं तो कुछ समाज, परिवार एवं राष्ट्र से जुड़ी विसंगतियों एवं विकृतियों पर भी मार्मिक प्रहार करते हैं। आचार्य श्री महाश्रमण अपने शुभाशंषा में लिखते हैं कि सहना सुखी जीवन की एक अनिवार्य अपेक्षा है। वास्तव में जो सहना जानता है, वही जीना जानता है। जिसे सहना नहीं आता वह न तो शांति से जी सकता है और न अपने परिपार्श्व के वातावरण को शांति में रहने देता है। जहां समूह है वहां अनेक व्यक्तियों को साथ जीना होता है। जितने भी कलह उत्पन्न होते हैं, चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक उनके मूल में एक कारण असहिष्णुता है।'' प्रस्तुत कृति पारिवारिक और सामाजिक जीवन से जुड़ी सच्चाइयों की सच्ची अभिव्यक्ति है। इसे पढ़ते समय व्यक्ति अपना चरित्र सामने महसूस करता है। यह कृति युवा पीढ़ी को नई दिशा देने वाले सूत्रों को संजोये हुए है।

पुस्तक की प्रस्तुति प्रभावी एवं आकर्षक है और इसके लिए संपादक ने मौलिक सोच और तकनीक को इस्तेमाल किया है। इसमें हर आलेख के बाद 'करके देखें' के रूप में प्रायोगिक प्रस्तुति दी गई है जो इस पुस्तक को अधिक उपयोगी एवं पठनीय बनाती है।

समीक्ष्य कृति में लीक से हटकर कुछ कहने का तथा लोगों की मानसिकता को झकझोरने का सघन प्रयत्न हुआ है। यह कृति हर वर्ग के पाठक को कुछ सोचने, समझने एवं बदलने के लिए उत्प्रेरित करेगी तथा अहिंसक समाज संरचना की दिशा में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगी।

अध्यात्म वाणी : गागर में सागर

बरुण कुमार सिंह

आध्यात्मिक साधना एकांत में होती है और उसके लिए कोई शोर-शराबा नहीं होता और जो लोग शोर-शराबा कर अपने धार्मिक होने का प्रमाण देते हैं वह दूसरे को कम अपने को ज्यादा धोखा देते हैं। अध्यात्म वह है जो इस शरीर में विद्यमान है और उससे साक्षात्कार किये बिना हम चल रहे हैं तो यह समझ लेना चाहिए कि अज्ञान के उस अंधेरे में जहां हमें दोषों के अलावा कुछ और नहीं दिखाई देता और उनको देखते हम अपनी जिंदगी बिता देते हैं।

'अध्यात्म-वाणी' कृति के लेखक अध्यात्म योगी आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी म.सा. जिनके रोम-रोम में प्रभु भक्ति का झंकार है, रुधिर की बूंद-बूंद में अध्यात्म का नाद है, नाड़ी के प्रत्येक स्पंदन में करुणा और मैत्री का संदेश है, जिनकी संपूर्ण अस्मिता मूर्तिमंत पवित्रता है। ऐसे योगिराज के प्रत्येक शब्द मंत्र बनकर इस कृति में प्रस्तुत हुये हैं, इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

'अध्यात्म-वाणी' पुस्तक को चौदह खण्डों में विभाजित किया गया है- अध्यात्म, भक्ति, मैत्री, मन, विचार, धर्म, कषाय, ममता, अहंकार, मोह, स्वार्थ, जीवन, गुण-दोष एवं प्रकीर्णक।

'अध्यात्म-वाणी' कृति हमें पुकारती है- बाहर दौड़नेवाला ओ मानव! बाहर बहुत दौड़ा! अब तू रुक और भीतर लौट। तूं जिसे खोज रहा है, वह तेरे ही अंदर है। अमृत का झरना, आनंद का खजाना, सुख का सागर... जिसको तू अनंत-अनंत काल से ढूंढ रहा है, वह सब कुछ तेरे ही अंदर है। पदार्थ के पीछे दौड़ना भौतिकता है। परमात्मा के पीछे दौड़ना आध्यात्मिकता है।

'अध्यात्म-वाणी' कृति के पन्ने-पन्ने पर भीतर से साक्षात्कार करने के अमूल्य सूत्र दिये गये हैं। झूठा अहंकार छोड़ने के लिए प्रेरित किया गया है। अगर आप ध्यान से पढ़ेंगे और इसे जीवन में उतारेंगे तो सचमुच आपकी बहिर्गामी चेतना अंतर्गामी बनेगी। क्योंकि इस पुस्तिका के प्रत्येक वाक्य मंत्र है, प्रत्येक शब्द अमृत का कुंड है। आचार्यश्री विजयकलापूर्ण सूरीजी अपनी ही परम्परा के आनंदघनजी, यशोविजयजी, देवचन्द्रजी जैसे महापुरुषों की शृंखला से जुड़ा एक नाम है जो न केवल जैन समाज बल्कि संपूर्ण मानवसमाज को नया दिशा-दर्शन देने में सक्षम है। आजकल के भौतिकवादी एवं बुद्धिवादी युग में कोई आनंदघनजी, यशोविजयजी, देवचन्द्रजी, मीरां, नरसिंह मेहता जैसे प्रभु भक्त पैदा हो, यह असंभव सा लगता है लेकिन हम आचार्य कलापूर्ण सूरीश्वरजी म.सा. के विचारों को पढ़ते हुए कह सकते हैं आज के युग में भी वैसे ही महापुरुष पैदा हो सकते हैं। इस पुस्तक में लेखक ने गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में समष्टिगत चेतना को जगाने उपाय निर्दिष्ट है।

पुस्तक अध्यात्म वाणी
लेखक आचार्य श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी
प्रकाशक श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ भूपतवाला ऋषिकेश राजमार्ग, हरिद्वार-249410
पृष्ठ 158
मूल्य रु. 95

स्मृति

प्रेमकुमारी कटियार

हिन्दी के गीत–संसार में महादेवीजी के जैसा छन्दमय दीपार्चन या आराधन लगभग दुर्लभ है। जीवन में प्रकाश को घोलने वाले ऐसे गीत कभी रचे ही नहीं गये।

महादेवी वर्मा
एक प्रतिहत आत्मा का दीपार्चन

महादेवी वर्मा को हिन्दी जगत में इस युग की मीरा कहा जाता है। वह इस विशेषण की अधिकारी भी है। उन्होंने जिस तरह की गीत-रचनाएं कीं, उनमें घना अवसाद और पीड़ा का स्वर सुना जाता है। इन क्षणों में वह शांति के लिए दीपार्चन का सम्बल लेती रहीं। यद्यपि, उनके हृदय में दुख और उदासी के मेघ आच्छादित रहते तब भी वह अपनी आत्मा में एक दीप से निरंतर झरने वाले प्रकाश से अंधियार को चुनौतियां देती रहीं किन्तु उनके स्वर में कोमलता और विनम्रता उपस्थित रहती। देखा गया है कि सामान्य व्यक्ति जब-जब निराशा की गोद में पलता है तब भी वह ऐसे किसी माटी के दीप से प्रकाश की न तो याचना करता और न उसे विश्वास रहता कि उसकी आत्मा में कोई दीप प्रकाश उलीच रहा है। परन्तु महादेवी का सम्बल उनके हृदय या आत्मा में प्रज्वलित एक दीप का प्रकाश ही था। इसीलिए उनके द्वारा रचित उनके दीप-गीत दीपार्चन की प्रेरणा उन्हें देते रहे। फिर देखा गया है कि महादेवी के लिए मंदिर का दीप हो या घर-आंगन का अथवा तुलसी चौरे- का सबका प्रकाश पवित्रता का द्योतक ही रहा। वह एक गीत में कहती हैं-

सब बुझे दीपक जला लूं।
घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूं।
क्षितिज-कारा तोड़ कर अब
गा उठी उन्मत्त तडित आंधी,
अब घटाओं में न रुकती
लास-तन्मय तड़ित बांधी
धूलि की इस वीण पर मैं तारहर तृण का मिला लूं।
लय बनी मृदु वर्त्तिका,
हर स्वर जला बन लौ सजीली
फैलती आलोक-सी
झंकार मेरी स्नेह गीली।
हर मरण के पर्व को मैं आज दीपावली बना लूं।

महादेव को एक अप्रतिहत आत्मा की कवयित्री कहना अतिशयोक्ति नहीं है। उन्होंने जगत से उन्हें मिले अंधकार को भी स्वीकार किया और कुछ इस तरह से दीपार्चन करती कि सारा अंधकार तिरोभाव का चरित्र ग्रहण कर लेता। उनके जीवन का यह वैशिष्ट्य रहा कि उनके नेपथ्य में धीमी पदचाप से अंधेरा उन्हें चैतन्य रहने का संकेत करता फिर भी वह अपने में मग्न रहकर जीवन-यात्रा को पूर्णता के गंतव्य तक ले जाना चाहती थी। एक अन्य दीपार्चन गीत में वह कहती हैं-

पूछता क्यों, शेष कितनी रात।
अमर सम्पुट में ढला तू,
छू नखों की कांति चिर-संकेत पर जिनके जला तू
स्निग्ध सुधि जिनकी लिए कज्जल-दिशा में हंस चला तू दिशा
परिधि बन घेरे तुझे वे उंगलियां अवदात।

महादेवीजी ने माटी के दीपों के प्रति भी सम्मानप्रद शब्दों का ही प्रयोग किया है। उन्हें यह विश्वास रहा कि जो दीप अपने प्रकाश को लेकर काजल जैसे अंधेरे में बढ़ रहा है- उसे उंगलियां ही प्रकाश प्रदान करेंगी। दीपों में आत्मविश्वास जगाने की यह कल्पना कितनी मनोरम है। अनेक झंझावातों से युद्धरत रहीं यह कवयित्री अगर बाहर से उदास रही तो अंतस में प्रसन्नता का झरना अनवरत प्रवहमान रहा। ऐसे झरने से वह अपनी पिपासा शांत करती रहीं।

महादेवी वर्मा सदैव ही निराशा और पीड़ा का वरण करतीं रहीं–क्योंकि उनके गीतों का प्रसव इनमें से हुआ। वह मंदिर के दीप के प्रति भी आस्थाशील रहकर जगत से निवेदन करती रहीं–

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।
रजत शंख घडियाल स्वर्ण वंशी-वीणा स्वर
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर
जब था कल-कंठों का मेला
विहंसे उपल तिमिर था खेला
अब मंदिर में इष्ट अकेला
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।
यह मंदिर का दीप इसे नीरव गलने दो।

महादेवी की जीवनयात्रा पर अगर दृष्टिपात किया जाए तो वह उदासी और पीड़ा का समुच्चय प्रतीत होती थी। किन्तु, उनके लिए विधाता ने निवारण के जो दस्तावेज लिखे थे- उन पर केवल एक शब्द होगा और वह था–'गीत'।

दीपों पर रचे गये उनके गीतों के संदर्भ में वह स्वयं कहती हैं कि मेरा बचपन इंदौर की छावनी में बीता जहां लैम्प ही जलाये जाते थे। किस कमरे में किस रंग के ग्लोब वाला लैम्प रखा जायेगा, यह भी मुझे याद रहता था। हमारे कमरे में सफेद रंग वाला लैम्प रखा जाता था। पिताजी के कमरे में नीले रंग के ग्लोब वाला। मां के कमरे में कोई भी रखा जा सकता था। क्योंकि उनका अधिकांश समय रसोईघर या पूजाघर में ही बीतता था। पूजाघर में आरती के दीये ही जलते थे। आरती के दीपक की लौ छूकर माथे से लगाने को हम सबमें होड़ रहती थी और लौ छूने की इच्छा में अनेक बार मेरी उंगलियां भी जल जाती थी। मां की पूजा आरती के अतिरिक्त तुलसी-चौरे पर भी दीपक रखा जाता था। विशेष अवसर पर और विशेष पर्वों पर हमें चौराहा, कुंए की जगत, बाहर के किसी मंदिर में तथा पीपल-वट आदि के नीचे भी घी के दीये रखने पड़ते थे।

वास्तव में महादेवीजी को जो महीयसी कहा जाता है-यह सम्बोधन उनके लिए समीचीन ही है। फिर प्रश्न उस आस्था-श्रद्धा का है जो दीप से जुड़ी होती हैं। किन्तु, वह मंदिर के पुजारियों के प्रति भी अप्रतिम श्रद्धा-भाव का पोषण करती थी। एक गीत में यही अभिव्यक्त हुआ है-

पुजारी दीप कहीं सोता है...
जो दृगदानों के आभारी
उर वरदानों के व्यापारी
जिन अंधेरों पर कांप रही है
अनमांगी भिक्षाएं सारी
वे थकते, हर सांस सौंप देने को यह रोता है
पुजारी दीप कहीं सोता है...

हिन्दी के गीत-संसार में महादेवीजी के जैसा छन्दमय दीपार्चन या आराधन लगभग दुर्लभ है। फिर जीवन में प्रकाश को घोलने वाले ऐसे गीत कभी रचे ही नहीं गए। इसलिए महादेवी का यह अवदान अप्रतिम है।

-108-ए, प्रगतिनगर, ऋषिपुरम, फेज-1, बरखेडा, भोपाल-462021

अध्यक्षीय

मनीष जैन

एक उत्सव है जीवन

कण-कण में जिस तरह भगवान बसे हैं, ठीक उसी तरह कण-कण में जीवन भी समाया है। संगीत की स्वर-लहरियों, पंछियों की चहचहाहट, सागर की लहरों, पत्तों की सरसराहट, मंदिर की घंटियों, मस्जिद की अजान, कोयल की कूक, मयूर के नयनाभिराम नृत्य, लहलहाते खेत, कृषक के मुस्कराते चेहरे, सावन की रिमझिम फुहार, इंद्रधनुषी रंगों, बादलों की गर्जना, बच्चे की मोहक मुस्कान, फूलों की खूशबू, बारिश की सौंधी-सौंधी महक, माँ की लोरियाँ, पानी की गगरियाँ। यही है जीवन के वास्तविक उत्सव और यही है मनुष्य-मन की उत्सवमयता।

प्रकृति के अनुपम सौंदर्य में भी जीवन का विलक्षण आनंद समाहित है। जीवन एक उत्सव है, नाचों गाओं और मुस्कराओ। जिंदादिली का नाम है जिंदगी। जीवन पुष्प है, प्रेम उसका मधु। जिंदगी में सदा मुस्कराते रहो, फासले कम करो, दिल मिलाते रहो। जीवन एक चुनौती है। विपत्तियों से जूझकर चुनौती स्वीकार करना ही जिंदादिली है, साहस है तथा इसी में रोमांच भी है। लाओत्से ने कहा है कि इसकी फिक्र मत करो कि रीति-रिवाज का क्या अर्थ है। रीति-रिवाज आनन्द देते हैं, बस काफी है। आनन्द का जीवन में बहुत महत्व है। होली मनाओ, दीवाली मनाओ, बसन्तोत्सव मनाओ। कभी दीये भी जलाओ, कभी रंग-गुलाल उड़ाओ तो कभी जीवन के गीत गाओ। कभी संयम के गीत गाओ तो कभी साधना के। जिन्दगी को सहज, सरल और नैसर्गिक रहने दो। मिलनसार होना अच्छा है, खाने-पीने को संस्कार देना अच्छा है, मैत्री अच्छी है, बड़ों के प्रति सम्मानभाव व्यक्त करना -यह सब करते हुए स्वयं की पहचान भी जरूरी है। जैसे हो वैसे अपने को स्वीकार करो। और इस सरलता और सहजता से ही धीरे-धीरे स्वयं की स्वयं के द्वारा हो सकेगी।

अपने प्रति सकारात्मकता होनी जरूरी है। एक दिव्यदृष्टि जरूरी होती है जीवन की सफलता एवं सार्थकता के लिये। सर विलियम ब्लैकस्टोन ने लिखा है- रेत के एक कण में एक संसार देखना, एक वन पुष्प में स्वर्ग देखना, अपनी हथेली में अनन्तता को देखना और एक घंटे में शाश्वतता को देखना। सचमुच यही जीवन का वास्तविक आनन्द है, उत्सव है। बेंजामिन फ्रेंकलिन का यह कथन जीवन को एक सार्थक दिशा देता है कि हो सकता है कि दीर्घ जीवन पर्याप्त अच्छी न हो परन्तु अच्छा जीवन पर्याप्त दीर्घ होता है।

जीवन एक प्रयोग है, नित नए प्रयोग करते रहो, अनुभवों का विस्तार करो और नवजीवन, नवसृष्टि का सृजन करो। गिरकर उठना और उठकर पुनः अपने लक्ष्य की ओर चल पड़ना ही कामयाब जीवन का राज है।

जीवन का लक्ष्य होना चाहिए, निरंतर चलते रहो, तब तक चलते रहो, जब तक कि मंजिल न पा लो। जीवन चलायमान है, चलता ही रहता है, अपनी निर्बाध गति से। जीवन न तो रुकता है और न ही कभी थकता है। जीवन पानी की तरह निरंतर बहता रहता है। जीवन कभी नहीं हारता है, उससे हम ही हार जाते हैं। चलते रहो और पीछे मुडकर कभी न देखो, लक्ष्य शिखर की ओर रखो और आसमान की बुलंदियाँ खुले जेहन में।

जीवन एक प्रयोग है, नित नए प्रयोग करते रहो, अनुभवों का विस्तार करो और नवजीवन, नवसृष्टि का सृजन करो। गिरकर उठना और उठकर पुनः अपने लक्ष्य की ओर चल पड़ना ही कामयाब जीवन का राज है।

चलना ही जीवन है। बस, चलते ही रहो क्योंकि ठहराव जीवन में नीरसता, विराम व शून्य लाता है। आवाज लगाने पर भी यदि कोई सुनता नहीं है तो अपने लक्ष्य की ओर अकेले ही चले चलो। जहाँ गति नहीं है, वहाँ सुमति उत्पन्न नहीं हो सकती। जीवन की गति रुकने पर साँसों के थमने का सिलसिला शुरू हो जाता है। गीता में कहा है, व्यक्ति पृथ्वी पर अकेला ही आता है व अकेला ही जाता है। प्रगति के नाम पर आज जो कुछ हो रहा है- उससे मानव व्यथित है, समाज परेशान है, राष्ट्र चिंतित है। अपेक्षा है आज तक जो अतिक्रमण हुआ है, स्वयं से स्वयं की दूरी बढ़ाने के जो उपक्रम हुए है, उससे पलट कर पुनः स्वभाव की ओर लौटने की, स्वयं से स्वयं के साक्षात्कार की। सुखी परिवार अभियान इसी स्थिति को स्थापित करने का उपक्रम है। जीवन शांति है, सुव्यवस्था है, समाधि है। अज्ञात की यात्रा है। विभाव से स्वभाव में लौट आने की यात्रा है। समाधि समाधानों का केन्द्र है। अतः अपनी सक्रिय ऊर्जा और जीवनी शक्ति को उपयोगी दिशा प्रदान करें।

हाल ही में सुखी परिवार अभियान के प्रणेता गणि राजेन्द्र विजयजी की सन्निधि में जीवन की आध्यात्मिक ऊर्जा से सराबोर होने का अवसर मिला। उस दौरान संयम पथ पर अग्रसर आदिवासी कन्या पारुल की दीक्षा ने जीवन के एक सर्वथा भिन्न एवं साहसपूर्ण परिदृश्य से रू-ब-रू करवाया, वहीं आदिवासी जन-जीवन की उत्सवप्रियता से परिचित होने का अवसर मिला। देखने को मिला कि सेवा एवं जनकल्याण क्या होता है, एक सम्पूर्ण समाज किस तरह एक संत के बताये पदचिन्हों पर चलता है, किस तरह बिना किसी पुलिस की व्यवस्था के पचास हजार से अधिक आदिवासी लोग भोज्य का आनन्द लेते हैं और किस तरह तीन दिन तक उत्सव का माहौल श्रद्धा एवं आस्था से ओतप्रोत होकर सम्पन्न होता है। सचमुच एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय का लोकार्पण समारोह एवं गणि राजेन्द्र विजयजी के पांच आयम्बिल तप की पूर्णाहूति बिना किसी राजनेता के लाखों आदिवासियों की उपस्थिति में सर्वत्र उत्सवमयता लिये हुए थी।

नेपोलियन कहते हैं, जो व्यक्ति अकेले चलते हैं, वे तेजी से आगे की ओर बढते हैं। जिस प्रकार सूर्य अकेले ही अपनी तेजस्वी किरणों से समस्त संसार को प्रकाशमान कर देता है, उसी प्रकार एक ही वीर अपनी शूरता, पराक्रम और साहस से सारी पृथ्वी को अपने पैरों तले कर लेता है।

बैठने वालों का भाग्य भी बैठ जाता है और खड़े होने वाले का भाग्य भी खड़ा हो जाता है। सोने वाले का भाग्य भी सो जाता है, किंतु पुरुषार्थी, कर्मशील का भाग्य सदा गतिशील ही रहता है। ■